Issue : **July 2014**

Van Sangyan

Tropical Forest Research Institute
(Indian Council of Forestry Research and Education)
PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021
Visit us at: **http://tfri.icfre.gov.in (or) http://tfri.icfre.org**
Write to us at: **vansangyan_tfri@icfre.org**

From the Editor's desk

Insects are a class of invertebrates that represent more than half of all known living organisms on the Earth. Though they are mostly regarded as pests and various techniques to control them are still being devised, they perform complex ecological roles too; without insect pollinators, the terrestrial portion of the biosphere would be devastated. Some insects find economical importance too. This issue of *Van Sangyan* contains some articles about insects pests, as well as economically useful insects like honey bees, silkworms and lac insects.

There is also a section on the domestic uses of medicinal plants from Madhya Pradesh and Chhattisgarh, and other useful articles.

I hope that you would find all information in this issue relevant and valuable.

Readers of *Van Sangyan* are welcome to write to us about their views and queries on various issues in the field of forestry.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues.

Dr. N. Roychoudhary

Chief Editor

Contents

Contents	Page
मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में पाये जाने वाले औषधीय पौधों का परिचय एवं घरेलू उपयोग – हरिओम सक्सेना, सन्तोष कुमार चौबे एवं नीलू सिंह	1
मधुमक्खी पालन : हवा में बह रहा एक लाभदायक स्वरोजगार – डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद, ट्रीसा हेमल्टन एवं डॉ.एन. रायचौधरी	8
कृषि का लाभ दायक कीट : लाक्षा कीट (Lac insect –Laccifer lacca) – शालिनी भोवते	14
Orange Blister Beetle : A Minor Pest - Kritish De	17
रेशम कीटपालन से जुड़ा जीविकापार्जन – डॉ. ममता पुरोहित एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी	20
Natural Resource Management by Apatani tribe in Arunachal Pradesh - Ngilyang Tam, IFS	24
जैवविविधता संरक्षण से ही पर्यावरण संरक्षण सम्भव – बाबूलाल दाहिया	29
हरी खाद – अविरल असैया	34
Know your Biodiversity (Golden Oriole & Sarpgandha) - Swaran Lata	36
Around the woods - Nameless	38

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में पाये जाने वाले औषधीय पौधों का परिचय एवं घरेलू उपयोग

हरिओम सक्सेना, सन्तोष कुमार चौबे एवं नीलू सिंह

अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग, उ.व.अ.स., जबलपुर

आदि अनंतकाल से भारतवर्ष में औषधीय पौधों का उपयोग होता आ रहा है। उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत जैसे अनेक प्राचीन ग्रन्थों में भी औषधीय पौधों का वर्णन आता है। औषधीय पौधों के प्रयोग का सबसे पुराना प्रमाण आज से 7000 वर्ष पूर्व ऋग्वेद में 67 औषधीय पौधों का 4500–6500 वर्ष पुराने यजुर्वेद में 81 औषधीय पौधों का एवं अथर्ववेद में 295 औषधीय पौधों का वर्णन मिलता है। इसी क्रम में औषधीय पौधों का प्रथम प्रणालीबद्व अध्ययन आज से लगभग 2200 से 2700 वर्ष पूर्व चरक ने अपनी पुस्तक चरक संहिता में लगभग 1100 औषधीय पौधों के गुणों के उपयोग का अध्ययन किया है। सुश्रुप्त ने भी अपनी पुस्तक सुश्रुप्त संहिता में 1270 पौधों के गुणों एवं उपयोग का अध्ययन किया है। औषधीय पौधों को बीमारियों के आधार पर चरक ने 1100 पौधों को 50 वर्गों में विभाजित किया है और सुश्रुत ने 1270 पौधों को 38 वर्गों में विभाजित किया है। ग्रंथों में दिए गये पौधों का प्रयोग आज भी विभिन्न भारतीय चिकित्सा पद्वतियों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

आज एलौपैथी के बुरे सहप्रभावों से हर ब्यक्ति परेशान है तथा औषधीय पौधों पर आधारित बुरे सहप्रभावों से मुक्त इन जड़ी–बूटियों को अपनाना चाहता है। प्राकृतिक जड़ी–बूटियां रोग निवारण व सामान्य स्वास्थ्य लाभ में अत्यंत उपयोगी है। एक ही पौधे के प्रयोग से कई रोगों व समस्याओं से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही एक ही रोग के लिए कई पौधों को प्रयोग में लाया जा सकता है। जहां एक ओर आंवला प्राकृतिक विटामिन सी से भरपूर है, वहीं सफेद मूसली, सतावर व अश्वगंधा जैसे जड़ी–बूटियां शक्ति व स्फूर्तिदायक गुणों की खान है। सर्पगंधा उच्च रक्तदाब में असरकारी है तो सदाबहार कैंसर रोधी गुणों के लिए पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। इस प्रकार प्रत्येक औषधीय पौधे में कोई न कोई एक या एक से अधिक महत्वपूर्ण गुण पाया जाता है।

चिकित्या क्षेत्र में किए गये नवीनतम अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि रोग निवारण में औषधीय पौधों के लाभदायक असर के पीछे इनमें निहित रासायनिक यौगिकों का हाथ होता है। ये यौगिक अकेले या अन्य यौगिकों के साथ मिलकर किसी रोग विशेष का उपचार करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। अतः इन पौधों का रासायनिक संगठन एक महत्वपूर्ण विषय है। किसी भी पौधे में दो प्रकार रासायनिक यौगिक पाये जाते हैं–

प्राथमिक यौगिक - जैसे प्रोटीन कार्वोहाइड्रेट, शर्करा, वसा, एमीनो अम्ल, क्लोरोफिल आदि जो पौधों की वृद्धि एवं विकास में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। ये यौगिक लगभग सभी वनस्पतियों में पाये जाते हैं।

द्वितीय यौगिक- जैये एल्केलाइड, टरपीनॉइड, फिनोलिक्स, सैपोनिनि आदि जो पौधे की उपापचई क्रियाओं में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। इन यौगिकों का वितरण अलग–अलग पौधों या पादप प्रजातियों में अलग–अलग होता है।

जब ये रासायनिक तत्व पौधों के अंदर होते हैं तो उन्हें विभिन्न रोगों से बचाते हैं और जब इन वनस्पत्तियों को हम दवाईयों के रूप में ग्रहण करते हैं तो ये यौगिक अलग–अलग क्रियाविधियों से हमारे शरीर की प्रणाली को प्रभावित कर हमें रोगों से बचाते हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से अनेक पौधों की रोगों से लड़ने की क्षमता व कार्य विधि स्पष्ट हो चुकी है। जैसे सदाबहार से प्राप्त कैंसर प्रतिरोधी एल्केलाईड

बिनव्लास्टीन तथा बिनक्लसटीन क्रमशः लिमफोमा ट्यूमर तथा तीव्र ल्यूकेमिया (एक प्रकार का कैंसर) में असरकारी होते हैं। सोमलता (एफैन्डरा जिरार्डियाना) से प्राप्त यौगिक एफैड्रीन (एल्केलाईड) अस्थमा के उपचार के दौरान तंत्रिका तंत्र को उदीप्त करता है, तथा मूत्र बनाने के प्रक्रिया को बढ़ाता है। यह फेफड़ों की श्वसनिकाओं को फैलाता है। जिससे बीट रिसैप्टा उद्वीत होते हैं। और श्वांश में कठिनाई कम होने लगती है। सर्पगंधा से प्राप्त एल्केलाईड रेसपरीन उच्च रक्तचाप की स्थिति में सिमपैथैटिक तंत्रिका ऊतकों से न्यूरोट्रांसमीटर पदार्थ नौरिपिनफ्रीन को लगभग पूरी तरह से समाप्त कर देता है। इस तंत्रिका अवरोध से वाहिकाएं सिथिल पड़ जाती हैं तथा ह्दय की कार्य क्षमता घट जाती है जिसके फलस्वरूप रक्तदाब घटने लगता है। सुनिश्चित असर रखने वाले ऐसे अनेक पौधों का प्रयोग एलौपैथी पद्वति में किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ मध्यभारत के उष्णकटिबंधीय वनक्षेत्र में आते हैं एवं इन दोनों राज्यों में औषधीय पौधे एवं वनस्पतियॉं प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। इन राज्यों में रहने वाले विभिन्न जनजातियों के लोग अपने रोगों को दूर करने हेतु मुख्य रूप से औषधीय पौधों पर ही निर्भर रहते हैं। इन राज्यों में वैद्य भी काफी संख्या में सक्रिय है जो कि विभिन्न औषधीय उत्पादों को बनाकर रोगों का उपचार करते हैं। नीचे दी गई तालिका में मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में पाये जाने वाले प्रमुख औषधीय पौधों का नाम एवं उनका औषधीय उपयोग दिया गया है।

तालिका - मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ में पाये जाने वाले प्रमुख औषधीय पौधे एवं उनका औषधीय उपयोग

क्रमांक	वनस्पति नाम (हिन्दी में)	वनस्पति नाम (In English)	प्रचलित नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
1	एब्रस प्रकाटोरियस	*Abrus precatorius* L.	लाल गुंजा, रत्ती	बीज, जड़, पत्तियाँ	आभूषण एवं पारंपरिक दवाई बनाने में
2	एबुटिलन इन्डीकम	*Abutilon indicum L.*	अतिवला कंघीं	फल	सफेद दाग मिटाने में
3	एकाइरेंथस एस्पेरा	*Achyranthes aspera* L.	अपामार्ग	पूर्ण पौधा	अस्थमा कफ निवारण
4	एकोरस केलेमस	*Acorus calamus*	वच	कंद	सुगंधित तेल, पेट दर्द
5	ईगल मारमेलस	*Aegle marmelos* Corr.ex Roxb.	वेल	फल ,पत्तियाँ	एनीमिया, उच्च रक्त दाब में
6	एलेन्थस एक्सेकसा	*Ailanthus excelsa* Roxb.	महानीम	छाल	एन्टीएलर्जी
7	एलोय बारबेन्डस	*Aloe barbadensis* Mill	एलोवेरा, घृतकुमारी	पत्तियाँ	बुखार एवं त्वचा रोग में
8	एन्डोरोग्राफिस पैनिकुलेटा	*Andrographis paniculata* Wall.ex. Nees	कालमेघ	पूर्ण पौधा	बुखार में
9	अरजेरिया एस्पेसिओसा	*Argeria speciosa* (L.F.) Sweet	विधारा	जड़	नपुसंकता, गैस, अल्सर
10	आरिष्टोलोकिया इंडिका	*Aristolochia indica* L	ईश्वर मूल	जड़	सर्पदंश एवं ह्दय रोग में
11	एस्पेरीगस रेसीमोसस	*Asparagus raecemosus* Willd.	सतावर	कन्द	कैंसर में, महिला दुग्ध वृद्वि में
12	अजारीरेक्टा इंडिका	*Azadirachta indica* A.Juss.	नीम	तना ,फल, पत्तियाँ, छाल, तेल	त्वचा रोग, ब्लड शुगर
13	बकोपा मोनोराई	*Bacopa monnieri* (Linn.) Penn.	ब्राम्ही	पूर्ण पौधा	बुद्विवर्धक
14	बरलेशिया पिनायरिस	*Baliospermum montanum* (Willd.) Mull.Arg.	दन्ती	जड़	अस्थमा एवं सर्प दंश में
15	बोराबिया डिफूजा	*Boerhaavia diffusa* Linn.	पुर्ननवा	जड़	रक्त शोधन, ह्दय रोग में

कमांक	वनस्पति नाम (हिन्दी में)	वनस्पति नाम (In English)	प्रचलित नाम	उपयागेगी भाग	उपयाेग
16	बसवेलिया सेराटा	*Boswellia serrata* Roxb. ex Colebr.	सलाई	ओलिओ–रिसन	पेट दर्द निवारक
17	बुचेनिया लेन्जन	*Buchanania lanzan* Spreng.	चिरोन्जी	बीज	त्वचा विकार एवं दाग मिटाने में
18	सलाइचेरा ओलिएसा	*Carthamus tinctorius* L.	कुसुम	बीज तेल	ह्दय रोग, बुखार, गांठ एवं कफ
19	केसिया ऐगेस्टिफोलिया	*Cassia angustifolia* Vahl.	सेन्ना	पत्तियाँ	बजन कम करने में
20	केसिया फिस्तूला	*Cassia fistula* L.	अमलतास	फल, जड़, छाल	रक्त शोधन, त्वचा रोग
21	सेलेस्टस पेनैकुलेटा	*Celastrus paniculata* Willd.	मालकांगनी	बीज, तेल	मस्तिष्क एवं याददास्त
22	सेरोपीजिया बल्बोसा	*Ceropegia bulbosa* Roxb.	दारूहल्दी	फल, जड़	पौरूष शक्ति
23	क्लोरोफाइटम बोरीबिलीयानम	*Chlorophytum borivillianum* Sant.	सफेद मुसली	कन्द	शक्ति वर्धक
24	सीजमलोकस परेरा	*Cissampelos pareira* L. var.hirsuta (Ham. Ex DC.) Forman	पथा	जड़, पत्तियाँ	ऊर्जा स्त्रोत
25	क्लोरोडेन्ड्रम मल्टीफोरम	*Clerodendrum multiflorum* (Linn.) Moon	अरनी	जड़	बुखार मलेरिया
26	क्लोरोडेन्डरम सेरेटम	*Clerodendrum serratum* (Linn.)	भारंगी	जड़	मधुमेह, रक्त चाप
27	कोलियस बारबेटस	*Coleus barbatus Benth.* Syn. *Coleus.*	पत्थरचूर	जड़	अस्थमा एन्टी कैंसर, ह्दय सम्बन्धी
28	काम्बीफोरा बेटाई	*Commiphora wightii* (Arn.) Bhand.	गुगलू	गोंद	स्मृति बृद्वि, उल्टि में
29	कानबोलुलस माइकोपिलस	*Convolvulus microphyllus* Syn. *Convolvulus. Pleuricaulis*	शंखपुष्पी	संपूर्ण पौधा	मोटापा, ट्यूमर, कफ में
30	कस्टस इस्पीसिमोसा	*Costus speciosus* (Koeni) Sm.	केवकंद	जड़	मूत्र संक्रमण
31	क्रिटीवा निरूला	*Crataeva religiosa* G.Forst.	वरूण	छाल	औषधीय क्षेत्र में
32	क्रूकुमा अमाडा	*Curcuma amada* Roxb	वन हल्दी	प्रकन्द	वातहर, भूख बढ़ाने में
33	ब्रुकूमा अंगस्टीफोलिया	*Curcuma angustifolia* Roxb.	तिखुर	प्रकन्द	दीर्घकालीन रोग निवारक
34	सइप्रस रोटैन्डस	*Cyperus rotundus* L.	नागरमोथा	कन्द	बुखार, पाचन विकार
35	डैस्मोलिडयम जंजीटिकम	*Desmodium gangeticum* DC.	सालपर्णी	संपूर्ण पौधा	नेत्र श्लेसमला शोध
36	डाइसकोरिया बल्बीफेरा	*Dioscorea bulbifera* Linn.	केवकन्द	घनकन्द	बुखार एवं खांसी में
37	एम्बेलिका राइवेस	*Embelia ribes* Burm. f.	बाइबिडंग	फल	उच्च्य रक्त दाब में
38	ग्लोरिया सुपरबा	*Gloriosa superba* Linn.	कलिहारी	कन्द	गठिया में
39	ग्लाइमेराइजा ग्लेबरा	*Glycyrrhiza glabra* Linn.	मुलेठी	प्रकन्द	कफ, खांसी में
40	मिलाइना अरवेरिया	*Gmelina arborea* Roxb.	गमभारी	जड़	उदर रोग में
41	जिम्नेमा सिल्वेस्टरी	*Gymnema sylvestre* R.Br.	गुड़मार	पत्तियॉ	मधुमेह में
42	हैलेक्टेरिस आइसोरा	*Helicteres isora* L.	मरोरफली	फल	मधुमेह में
43	हैमीडेमस इंडीकस	*Hemidesmus indicus* R.Br.	अनंतमूल	जड़	पारम्परिक औषधीय में

क्रमांक	वनस्पति नाम (हिन्दी में)	वनस्पति नाम (In English)	प्रचलित नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
44	जस्टीसिया अथाटोडा	*Justicia adhatoda* L.	वासा	पत्तियॉ एवं फल	अस्थमा, आक्षेप नाशक
45	लिटीसिया ग्लूटिमोसा	*Litsea glutinosa* (Lour) C.B.Rob	मैदा छाल	तना एवं छाल	जीवाणुरोधी
46	मर्टीनिया एनुआ	*Martynia annua* L.	काकनाशा	फल	मिर्गी, क्षय रोग
47	मैन्था अरबेनसिस	*Mentha arvensis* Linn.	पुदीना	पत्तियों से प्राप्त सुगन्धित तेल	गैस, कफ, पिताशय में
48	मैन्था पिपरेटा	*Mentha piperata* Linn.	पिपरमेन्ट	पत्तियों से प्राप्त सुगन्धित तेल	चाय, आइस्क्रीम
49	मिमोसा पुडिका	*Mimosa pudica* L.	लाजवन्ती	बीज	त्वचा रोग, मधुमेह
50	मोरिंगा ओलिओफेरा	*Moringa oleifera* Lam.	सहजन	फल एवं पत्तियॉ	पोषण क्षमता
51	म्यूकोना प्रेरियेंस	*Mucuna pruriens* (L.) DC	कोंच	बिज	कॉफी स्थापन एवं सर्प दंश
52	टासिमम सैंक्टम	*Ocimum sanctum* Linn	तुलसी	पत्तियॉ एवं बीज	कफ, खांसी, अध्यात्मिक उत्थान
53	ओरोजाइलम इंडीकम	*Oroxylum indicum* Vent	श्योनक	जड़	शूल दर्द, बुखार
54	फाइलेंथस मेमेरस	*Phyllanthus amarus* Schum. & Thonn	भुई ऑवला	संपूर्ण पौधा	पीलिया, लिवर, किडनी, प्लीहा
55	इंबिलिका ओफिसीनेलिस	*Phyllanthus emblica* Linn. Syn. *Emblica officinalis* Gaertn	ऑवला	फल	त्वचा रोग, संक्रमण
56	पिलंबिका जैलेनिका	*Plumbago zeylanica* L	चित्रक	जड़	त्वचा रोग
57	पोंगामिया पिन्नाटा	*Pongamia pinnata* (L.)	करंज	बीज	एंटीऑक्सीडेंट
58	सोरिया रोबस्टा	*Pterocarpus marsupium* Roxb.	बीजासाल	छाल	मधुमेह
59	राअल्फिया सरपेंटिना	*Rauvolfia serpentina* Benth.ex Kurz	सर्पगंधा	जड़	उच्च रक्त दाब
60	रूबिया कार्डिफोलिया	*Rubia cordifolia* L.	मजीठा	संपूर्ण पौधा	रक्त विकार
61	बिथानिया सोम्नीफेररा	*Withania somnifera* Dunal	अश्वगंधा	जड़	गठिया, चिंता, अस्थमा
62	सोलेनियम इंडीकम	*Solanum anguivi* Lamk. *Syn. S. indicum* Linn.	बरहटी	संपूर्ण पौधा	सर्प दंश उपचार, दशमूलारिष्ट बनाने में
63	सोलेनम नाइग्रम	*Solanum nigrum* Linn.	मकोय	संपूर्ण पौधा	रोगाणुरोधक, अस्थमा
64	सोलेनम सूरेटेन्स	*Solanum surattense* Linn. Syn. *S. xanthocarpum*	कंटकारी	संपूर्ण पौधा	कफ, खांसी, अस्थमा, दशमूलारिष्ट बनाने में
65	स्टीरियोस्पर्मम केलेन्वाइडिस	*Stereospermum chelonoides* (L.f.) DC.	पतला	जड़	बुखार
66	स्टीविया रिबीडिएना	*Stevia rebaudiana* (Bert.) Bertoni	स्टीविया	पत्तियॉ	मधुमेह
67	जिंजीकम कुमिनी	*Syzygium cumini* (L.) SkeelsKruti Dev 010	जामुन	बीज और छाल	मधुमेह
68	टिफरोसिया परपूरिया	*Tephrosia purpurea* (L.) Pers.	सर्पनखा	संपूर्ण पौधा	वण रोधक, जले हुए घाव के उपचार में

कमांक	वनस्पति नाम (हिन्दी में)	वनस्पति नाम (In English)	प्रचलित नाम	उपयाोगी भाग	उपयाोग
69	टरमेनेलिया अर्जुना	*Terminalia arjuna* (Roxb) W. & A.	अर्जुन	तना और छाल	उच्च रक्त दाब
70	टरमेनेलिया बैलीरिका	*Terminalia bellirica (Gaertn.) Roxb.*	बहेडा	फल	त्रिफला चूर्ण बनाने में
71	टरमेनेलिया चैबुला	*Terminalia chebula* Retz.	हर्रा	फल	त्रिफला चूर्ण बनाने में
72	थैलिकटिरम फोलियोलोसम	*Thalictrum foliolosum* DC.	पीलीजारी	जड़	पाचन सुधार हेतु
73	टिनोस्पोरा कोरडीफलोरा	*Tinospora cordifolia* (Willd.) Miers ex Hook.f. & Thoms.	गुडूची	तना	मधुमेह
74	यूरोरिया पिक्टा	*Uraria picta* Desv.	कृष्णपर्णी	संपूर्ण पौधा	स्त्री सम्बन्धित रोगों में, दशमूलारिष्ट बनाने में
75	बरमोनिया साइनेरा	*Vernonia cinerea* (L.) Less.	साहदेवी	संपूर्ण पौधा	मधुमेह, बुखार, जोड़ दर्द
76	यूफोरबिया हिटा	*Uphorbia hirta* L.	दूधी	संपूर्ण पौधा	डायरिया, अस्थमा, बुखार, पेचिस, संक्रमण
77	वेटिवेरिया जिजेनाइडिस	*Vetiveria zizanioides* (Linn.) Nash	खस	जड़	सुगन्धित तेल
78	क्लोरोफाइटम बोरिबिलियानम	*Chlorophytum borivillianum* Sant.	सफेद मुसली	जड़	बल बर्धक
79	ब्यूटिया मोनोस्पर्मा	*Butea monosperma* (Lam.) Taub.	पलास	पुष्प, जड़, गौंद	रंजन हेतु, अन्धापन, संक्रमण, अल्सर के उपचार में
80	इस्टरकूलिया यूरेन्स	*Sterculia urens* Roxb.	कुल्लू	गौंद	शक्तिवर्धक
81	ट्राइबुलस टेरीस्टेरिस	*Tribulus terrestris* Linn	गोखरू	जड़	मांस पेशियों को मजबूत बनाने में, ह्दय रोगों में
82	बुड्फोर्डिया फ्क्टीकोसा	*Woodfordia fructicosa* (L.) Kurz.	धाइ, धाइफूल	पुष्प एवं पत्तियॉ	डायरिया, अस्थमा, बुखार, पेचिस, संक्रमण, जोशवर्धक, अल्सर

औषधीय पौधों के घरेलू उपयोग

उपरोक्त तालिका में दिये गये औषधीय पौधों में से कुछ महत्वपूर्ण पौधों को उपयोग में लाने के कुछ घरेलू नुक्से यहॉ दिये गये हैं जो कि विभिन्न साहित्यों से लिये गये हैं।

(1) अम्लता (एसिडिटी) :– भोजन में अधिक मिर्च मसालों के सेवन से और दिनचर्या बिगड़ने से अमाश्य में अम्ल की अधिकता हो जाने से जलन, गैस, पेट में दर्द, कब्ज अथवा उल्टी आदि लक्षण दिखाई देने लगते है।

उपचार :– अधिक अम्लता से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित औषधियों का उपयोग कर सकते है–

1. एक चम्मच (5 ग्राम) आंवला चूर्ण दूध अथवा पानी के साथ दिन में दो बार लें।
2. एक चम्मच गिलोय/गुलांचा/गुटची का रस शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
3. एक चम्मच एक्लिप्टा एल्वा का चूर्ण शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
4. आधा कप दूध में तीन चम्मच सतावर की जड़ों का चूर्ण और आधा कप पानी को मिलाकर उबालें, आधा कप काढ़ा रहने पर शक्कर मिलाकर दिन में तीन बार लेना है।

(2) कब्ज :– कब्ज से पीड़ित ब्यक्ति का पेट साफ न होने के कारण भूख न लगना, पेट में दर्द की शिकायत के साथ सिर में भी दर्द रहना इस तरह के लक्षण देखने को मिलते हैं। इस समस्या का निदान औषधीय पौधों का उपयोग करने से हो जाता है।

उपचार :— निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है।

1. बच्चों को एक ग्राम ईसबगोल गर्म दूध अथवा पानी मिलाकर दिन में तीन बार देना चाहिए।
2. किसी भी वयस्क को एक चम्मच हर्रा या चूर्ण अथवा दो चम्मच ईसबगोल सोते समय गर्म दूध अथवा पानी के साथ लेने से आराम होता है।
3. पेट में दर्द के साथ—साथ कब्ज होने पर एक चम्मच हर्रा चूर्ण और एक ग्राम अदरक चूर्ण गर्म पानी के साथ लेने से आराम होता है।

(3) खांसी :— खासी का आना सीने एवं गले की बीमारियों का लक्षण है। सभी उम्र के ब्यक्ति इससे पीड़ित हो सकते हैं। बार—बार खांसी होने से गले में खरास, दर्द अथवा सूजन हो सकती है। खांसी के साथ बलगम अधिक मात्रा में आता है। सीने में दर्द, पीठ एवं पेट में दर्द, बुखार, भूख का न लगना, सिर दर्द, सांस लेने में तकलीफ होना बार—बार छींकना, उल्टी, चक्कर आना एवं नींद न आना जैसे लक्षण भी खांसी की अधिकता से हो सकते हैं।

उपचार :— निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है—

1. खांसी के साथ बलगम का आना, सीने में हल्का दर्द एवं भूख न लगना जैसे लक्षणों के लिए एक चम्मच शहद के साथ एक चम्मच हींग चूर्ण अथवा घुली हींग का रस मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।
2. खांसी के साथ गले जलन एवं दर्द के लिए तुलसी, लौंग और अदरक की चाय दिन में तीन बार लेने से लाभ मिलता है।
3. खांसी के साथ बुखार, छींक, सिर दर्द और भूख न लगना जैसे लक्षणों में आधा चम्मच पीपल (पीपली चूर्ण) और काली मिर्च और सूखी अदरक चूर्ण तीनों को बराबर—बराबर मात्रा में मिला कर एक चम्मच शहद अथवा एक कप गरम दूध के साथ दिन में तीन बार लेने से तत्काल लाभ होता है।
4. वयस्कों में लगातार खांसी सांस लेने में तकलीफ सिर दर्द और बदबू दार बलगम आने पर एक चम्मच अड़ूसा का रस एक चममच शहद और आधा चम्मच पीपल चूर्ण मिलाकर दिन में तीन बार लेने से लाभ होता है।

(4) दस्त :— इस बीमारी में पतले दस्त कभी—कभी म्यूकस के साथ दिन में कई बार होते हैं। साथी ही पेट के निचले हिस्से में तीव्र दर्द होता है। इसमें सामान्यतः भूख न लगना, पेट का फूलना, थकान, नींद का आना और शरीर में पानी की कमी का होना जैसे लक्षण होते हैं।

उपचार :— निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है—

1. दो चम्मच ईशबगोल चूर्ण दही या छाछ में मिलाकर दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
2. दर्द के साथ दस्त आने पर एक चम्मच हर्रा चूर्ण गर्म पानी के साथ दिन में दो बार लेने से आराम होता है।
3. दस्त के समय भूख न लगने पर एक चम्मच अदरक का चूर्ण अथवा रस शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
4. दस्त के साथ खून आने में एक चम्मच बेल का चूर्ण (हरे फल के टुकड़े अथवा सूखे फल के टुकड़े) छाछ या पानी के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।

(5) दांतो में दर्द :— हम सभी दांतों के दर्द से कभी न कभी परेशान होते हैं, इस दर्द में मसूड़ों से खून आना, सूजन और सिर दर्द जैसे लक्षण होते हैं।

उपचार :— निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है—

1. लौंग का तेल संक्रमित या प्रभावित दांत व मसूड़ों में लगाने से आराम होता है। तेल न मिलने से लौंग के एक, दो टुकड़े प्रभावित दांत पर रख कर चबाना चाहिए।

2. यदि दांत हिल रहा हो तो हवा में लटकती बरगद की जड़ों के टुकड़ों से दांतों को साफ करना चाहिए।

(6) जोड़ों में दर्द :– जोड़ों में दर्द बहुत अधिक खिचाव या मांस पेसियों में अकड़न के कारण हो सकता है। जोड़ों की गंभीर बीमारियों में टेढ़ापन आ जाता है, इस दर्द में जोड़ सूज जाते हैं। और कभी–कभी बुखार भी आ जाता है।

उपचार :– निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है–

1. छः चम्मच अरंडी की जड़ों का काढ़ा दिन में तीन बार सेवन करने से लाभ होता है।
2. यदि जोड़ सूजे हुए हैं, और लाल हो गये हैं, तो अरण्डी की जड़ का लेप अथवा अरण्डी की पत्तियों पर अरण्डी तेल लगाकर गरम करने के पश्चात् प्रभावित जोड़ पर बांधने से आराम लगता है।

(7) सिर दर्द :– सिर दर्द कई बीमारियों का प्रारंभिक लक्षण है। यह कभी–कभी हो सकता है अथवा लगातार भी रह सकता है।

उपचार :– निम्नलिखित में से किसी एक का उपयोग उपचार हेतु किया जा सकता है–

1. कब्ज के कारण होने वाले सिर दर्द में एक चम्मच हर्रा चूर्ण गरम पानी अथवा दूध के साथ सोते समय लेने से लाभ होता है।
2. एक चम्मच पीपल अथवा अश्वगंधा चूर्ण शक्कर मिले हुए पानी के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
3. जुकाम के कारण होने वाले सिर दर्द में एक चम्मच अदरक का रस शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से आराम मिलता है।

(8) जुकाम एवं बुखार :– सामान्यतः मौसम बदलने के साथ ही जुकाम का प्रकोप बढ़ जाता है वायु प्रदूषण के कारण भी खांसी, गले में दर्द अथवा सूजन, आंखों में संक्रमण होता है जिसके कारण बुखार आने लगती है।

उपचार :– जुकाम एवं बुखार के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

1. एक चम्मच हल्दी चूर्ण एक कप गरम दूध में मिलाकर दिन में तीन बार लेने से आराम होता है।
2. एक चम्मच अदरक के रस को शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से जुकाम व बुखार में आराम मिलता है।
3. एक चम्मच पीपल चूर्ण अथवा कुथ चूर्ण शहद के साथ दिन में तीन बार लेना चाहिए।

संदर्भ :–

1. औषधीय फसलें (कृषि तकनीकें जैविक खेती, उपयोग, रासायनिक संगठन उत्पाद संसाधन, व्यापार) – डा0चित्रागंद सिंह राघव
2. औषधीय पादप (संरक्षण, संवर्धन एवं उपयोगिता) – डी0 आर0 खन्ना, ऐ0के0 चौपड़ा, जी0 प्रसाद, डी0 एस0 मलिक, आर0 भूटियानी।
3. औषधीय एवं सुगंधीय पौधों की कृषि तकनीक :– डा0 रवीन्द्र शर्मा।
4. पर्यावरणः– (औषधीय पौधे विशेषांक) – पर्यावरण एवं वन मत्रालय, नई दिल्ली।

मधुमक्खी पालन : हवा में बह रहा एक लाभदायक स्वरोजगार

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद, ट्रीसा हेमल्टन एवं डॉ. एन. रायचौधरी

संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग/आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन प्रभाग/वन कीट प्रभाग

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

मधुमक्खियां सम्पूर्ण विश्व में पायी जाती हैं। मधुमक्खी एक सामाजिक जीव है। यह अपनी कालोनी निर्माण और शहद के लिये जानी जाती है। इनकी कालोनी प्रायः जंगलों में पेड़ों पर, उँचे स्थानों पर और पुराने घरों पर पायी जाती है। जंगलों से मधु एकत्र करने की परंपरा लंबे समय से लुप्त हो रही है। और यह जोखिम भरा कार्य भी है। मधुमक्खियां कई प्रजाति की होती हैं। कुछ प्रजाति की मधुमक्खियों को आसानी से पालतु बनाया जा सकता है।

मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित उद्यम है, जिसे हितग्राही अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए अपना सकते हैं। मधुमक्खियां फूलों के रस को शहद में बदल देती हैं और उन्हें अपने छत्तों में जमा करती हैं। बाजार में शहद और इसके उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण मधुमक्खी पालन अब एक लाभदायक और आकर्षक उद्यम के रूप में स्थापित होता जा रहा है। मधुमक्खी पालन के उत्पाद के रूप में शहद और मोम आर्थिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण उत्पाद हैं।

मधुमक्खी पालन उद्योग मुख्यतः देश के पर्वतीय क्षेत्रों में विकसित हुआ है । इससे शहद प्राप्त करने के लिए मधुमक्खी का पालन किया जाता है । उत्तर प्रदेश , जम्मू कश्मीर, दक्षिणी राजस्थान , महाराष्ट्र, पंजाब तथा तमिलनाडु में इसको बड़े पैमाने पर संचालित किया जाता है। गौ पालन एवं मुर्गी पालन की तरह मधुमक्खी पालन भी अब एक उद्योग हो गया है । पश्चिम क्षेत्र में इस धंधे ने एक व्यवसाय का रूप ले लिया है । वहाँ अनेक बड़े-बड़े मधुमक्षिकालय स्थापित हो चुके हैं । वहाँ के लोग लाखों रुपया प्रति वर्ष इस उद्योग से कमा रहे है और करोड़ों रुपए का लाभ निषेचन क्रिया द्वारा भारत को , कृषि उत्पादन की वृद्धि के रूप में दे रहे हैं।

भारत में सैकड़ों वर्ष पहले जिस प्रकार से मधुमक्खियाँ पाली जाती थीं , ठीक उसी तरह से हम उन्हें आज भी पालते आ रहे हैं । पुराने ढंग से मिट्टी के घड़ों में , लकड़ी के संदूकों में , पेड़ के तनों के खोखलों में , या दीवार की दरारों में, हम आज भी मधुमक्खियों को पालते हैं। मधु से भरे छत्तों से शहद प्राप्त करने के लिये छत्तों को काटकर या तो निचोड़ दिया जाता है या आग पर रखकर उबाल दिया जाता है । फिर इस शहद को कपड़े से छान लेते हैं । इस विधि से दूषित एवं अशुद्ध शहद ही मिल सकता है , जो कम कीमत में बिकता है। इस प्रकार प्राचीन ढंग से मधुमक्खियों को पालने में कई दोष हैं।

शहद एक स्वादिष्ट और पोषक खाद्य पदार्थ है। शहद एकत्र करने के पारंपरिक तरीके में मधुमक्खियों के जंगली छत्ते नष्ट कर दिये जाते हैं। इसे मधुमक्खियों को बक्सों में रख कर और घर पर शहद उत्पादन कर रोका जा सकता है। मधुमक्खी पालन का पर्यावरण पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मधुमक्खियों को व्यवस्थित तरीके से पालतु बनाया जाता है। अधिक उत्पादन के लिये एक बाक्स में कई छत्तों को रहने की व्यवस्था की जाती है

और इनसे यंत्रिक विधि से बिना छत्तों को नुकसान पहुँचाये शहद को निकाला जाता है।

मधु या शहद एक मीठा, चिपचिपाहट वाला अर्ध तरल पदार्थ होता है जो मधुमक्खियों द्वारा पौधों के पुष्पों में स्थित मकरन्द कोशों से स्रावित मधुरस से तैयार किया जाता है और आहार के रूप में मौनगृह में संग्रहित किया जाता है। शहद में जो मीठापन होता है वो मुख्यतः ग्लूकोज़ और एकल शर्करा फ्रक्टोज के कारण होता है। शहद का प्रयोग औषधि के रूप में भी होता है। शहद में ग्लूकोज व अन्य शर्कराएं तथा विटामिन, खनिज और अमीनो अम्ल भी होता है जिससे कई पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो घाव को ठीक करने और उतकों के बढ़ने के उपचार में मदद करते हैं। प्राचीन काल से ही शहद को एक जीवाणु-रोधी के रूप में जाना जाता रहा है। शहद एक हाइपरस्मॉटिक एजेंट होता है जो घाव से तरल पदार्थ निकाल देता है और शीघ्र उसकी भरपाई भी करता है और उस जगह हानिकारक जीवाणु भी मर जाते हैं। जब इसको सीधे घाव में लगाया जाता है तो यह सीलैंट की तरह कार्य करता है और ऐसे में घाव संक्रमण से बचा रहता है।

शहद को प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्मों में उच्च मान्यता मिली हुई है। हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु को कमल के फूल पर मधुमक्खी के रूप में विश्राम करते हुए दिखाया गया है। ३००० - २००० ईसा पूर्व के बीच में संकलन किये गए ऋगवेद में भी शहद तथा मधुमक्खियों के बारे में बहुत से सन्दर्भ मिलते हैं। शहद हिन्दू धर्म के बहुत से धार्मिक कृत्यों तथा समारोहों में प्रयोग होता है। प्राचीन यूनानी सभ्यता में भी शहद को बहुत मूल्यवान आहार तथा भगवान की देन माना जाता था। यूनानी देवताओं को अमरत्व प्राप्त था जिसका कारण उनके द्वारा किया गया ऐम्ब्रोसिआ सेवन बताया गया था, जिसमें शहद एक प्रमुख भाग होता था। अरस्तु की पुस्तक नेचुरल हिस्ट्री में भी शहद पर बहुत से प्रत्यक्ष प्रेक्षण उपलब्ध हैं। उनका विश्वास था कि शहद में जीवन वृद्धि तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट रखने के आसाधारण गुण होते हैं। इस्लाम के पवित्र ग्रन्थ कुरान के सूरा-१६ अन-नह्ल के अनुसार शहद सभी बीमारियों का निदान करता है। यहूदी धर्म में भी शहद को आहार या हनी बनाने में प्रयोग किया जाता है। संसार के लगभग सभी धर्मो ने शहद की अनूठी गुणवत्ता की प्रशंसा की है। मधुमक्खी पालन घरेलू उद्योग है जिसे हर श्रेणी के किसान, बागवान तथा भूमिहीन भी अपना सकते हैं। हवा में बह रहे पैसे को बड़ी सरलता से एकत्रित कर सकते हैं। इसका पालन-पोषण सरल है, कम लागत और कम समय में अन्य घरेलू उद्योग की तुलना में आमदनी अधिक है। औसतन एक बक्से से 60-65 किलोग्राम शहद उत्पादन किया जा सकता है। शहद एक ऐसी चीज है जिसे केवल मधुमक्खियां ही तैयार कर सकती हैं। मधुमक्खियों के शहद को ही बाद में प्रसंस्कृत करके डिब्बा बंद किया जाता है और बाजार में बेचा जाता है। मधुमक्खी के दो प्रकार के छत्ते होते हैं। एक तो वे प्राकृतिक रूपसे बनाती हैं। दूसरा उनसे नियंत्रित वातावरण पालकर तैयार करवाया जाता है। उत्तर भारत में पालतू मधुमक्खियां अधिक होती हैं। लेकिन मध्य व दक्षिण भारत में जंगली मधुमक्खियां ज्यादा पाई जाती हैं। बड़ी-बड़ी चट्टानों, पेड़ो पर ये अपना घर बनाती हैं। वनवासी क्षेत्रों में आज भी जंगलों से ही शहद प्राप्त की जाती है। आमतौर पर रात में आदिवासी लोग जंगलों में जाते हैं और मधुमक्खी के छत्तों के पास आग लगाकर धुंआ करते हैं। धुएं से मधुमक्खियां भाग जाती हैं और फिर ये छत्ते को तोड़कर शहद निकाल लेते हैं। इस तरीके से मधुमक्खियों की आबादी पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि छत्ता नष्ट होने से मधुमक्खियों के अंडे-बच्चे भी नष्ट हो जाते हैं। यह तरीका काफी जोखिम भरा भी होता है।

मधुमक्खियों के हमले में कभी-कभी जान भी चली जाती है । अभी तक जंगली मधुमक्खियों के छत्तों से शहद निकालने का कोई कारगर वैज्ञानिक तरीका विकसित नहीं हो पाया है ।

कृषि से जुड़े वे लोग जो कम लागत का व्यवसाय करने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए मधुमक्खी पालन का स्वरोजगार फायदेमंद साबित हो सकता है । यदि कृषि जगत के आंकड़ों पर नजर डाली जाए तो लगभग चालीस फीसदी किसान अपने व्यवसाय से संतुष्ट नहीं हैं । बीजों, रासायनिक खादों के बढ़ते मूल्य, फसलों के समर्थन मूल्य का कम होना आदि ऐसे कई कारण हैं, जिनसे उनका व्यवसाय प्रभावित हो रहा है । ऐसी स्थिति में जरूरी हो जाता है कि वह एक ऐसा व्यवसाय अथवा रोजगार करें, जिससे उन्हें खेती के साथ-साथ अतिरिक्त आमदनी हो । मधुमक्खी पालन उद्योग इसमें उनकी भरपूर मदद कर सकता है । पिछले कुछ वर्षों से न सिर्फ लोगों का रुझान इसकी तरफ बढ़ा है, बल्कि खादी ग्राम उद्योग भी अपनी तरफ से कई सुविधाएं उपलब्ध करा रहा है । मधुमक्खी पालन एक लघु व्यवसाय है, जिससे शहद एवं मोम प्राप्त होता है । यह एक ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का पर्याय बनता जा रहा है । वर्तमान में शहद उत्पादन के मामले में भारत पांचवें स्थान पर है । इस व्यवसाय के लिए चार तरह की मधुमक्खियां इस्तेमाल होती हैं । ये हैं - एपिस मेलीफेरा, एपिस इंडिका, एपिस डोरसाटा और एपिस फ्लोरिया । इस व्यवसाय के लिए एपिस मेलीफेरा मक्खियां ही अधिक शहद उत्पादन करने वाली और स्वभाव की शांत होती हैं । इन्हें डिब्बों में आसानी से पाला जा सकता है । इस प्रजाति की रानी मक्खी में अंडे देने की क्षमता भी अधिक होती है । जहां मधुमक्खियां पाली जाती हैं उसके आसपास की जमीन साफ-सुथरी होनी चाहिए । बड़े चींटे, मोमभक्षी कीड़े, छिपकली, चूहे, गिरगिट तथा भालू मधुमक्खियों के दुश्मन हैं, इनसे बचाव के पूरे इंतजाम होने चाहिए यह एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे यदि किसी फूल वाली फसल के साथ किया जाए तो उसमें बीस से अस्सी प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हो जाती है । पश्चिमी देशों में बढ़ती मांग को देखते हुए मधुमक्खी पालन की बुआई वाले क्षेत्रों में अच्छी-खासी संभावनाएं हैं । इसके अलावा सूरजमुखी, गाजर, मिर्च, सोयाबीन, पॉपीलोन, टिल्स ग्रैम, फलदार पेड़ में जैसे नींबू, कीनू, आंवला, पपीता, अमरूद, आम, संतरा, मौसमी, अंगूर, यूकेलिप्टस और गुलमोहर जैसे पेड़ वाले क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन आसानी से किया जा सकता है । मधुमक्खी पालन के लिए जनवरी से मार्च का समय सबसे उपयुक्त है, लेकिन नवंबर से फरवरी का समय तो इस व्यवसाय के लिए वरदान है ।

भारत में मधुमक्खी पालन का पुराना इतिहास रहा है । शायद पहाड़ की गुफाओं तथा वनों में निवास करनेवाले हमारे पूर्वजों द्वारा चखा गया प्रथम मीठा भोजन शहद ही था । उन्होंने इस दैवीय उपहार हेतु मधुमक्खियों के छत्ते की खोज की । भारत के प्रागैतिहासिक मानव द्वारा कंदराओं में चित्रकला के रूप में मधुमक्खी पालन का प्राचीनतम अभिलेख मिलता है ।

वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खी पालन का कार्य भारत में कई वर्ष पहले शुरू हो चुका है । कई देशों में मधुमक्खियों को आधुनिक ढंग से लकड़ी के बने हुए संदूकों में, जिसे आधुनिक मधुमक्षिकागृह कहते हैं , पाला जाता है। इस प्रकार से

मधुमक्खियों को पालने से अंडें एवं बच्चे वाले छत्तों को हानि नहीं पहुँचती। शहद अलग छत्तों में भरा जाता है और इस शहद को बिना छत्तों को काटे मशीन द्वारा निकाल लिया जाता है। इन ख़ाली छत्तों को वापस मधुमक्षिकागृह में रख दिया जाता है , ताकि मधुमक्खियाँ इन पर बैठकर फिर से मधु इकट्ठा करना शुरू कर दें। वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खी पालन का प्रारंभ भारत में कई वर्ष पहले हो चुका है। दक्षिण भारत में यह उद्योग काफ़ी फैल चुका है। सैकड़ों मधुमक्षिकागृह वहाँ पर मधु उत्पादन के लिये बसाए जा चुके हैं। भारत के कई राज्यों की सरकारें मधुमक्खी पालन के उद्योग की उपयोगिता को समझने लगी हैं और इसको फैलाने का प्रयत्न कर रही हैं। इस उद्योग के लिये अभी सारा क्षेत्र भारत में ख़ाली पड़ा है।

आधुनिक मधुमक्षिकागृह एक लकड़ी का बना संदूक होता है। इसके दो खंड होते हैं। नीचे के खंड को शिशु खंड कहते हैं। इसमें रखे छत्ते में अंडे , बच्चे तथा स्वयं मधुमक्खियों के लिये शुद्ध शहद एवं पराग संचित रहता है। शिशु कक्ष के ऊपर मधु कक्ष होता है , जिसमें मधुमक्खियाँ केवल शहद ही जमा करती हैं। मधुकक्ष से शहद के भरे छत्तों को निकालकर यंत्र द्वारा शहद निकाल लिया जाता है।

भारत में चार प्रकार की मधुमक्खियाँ पाई जाती हैं। पहली सबसे बड़ी मधुमक्खी को भँवर या डिंगारा कहते हैं। यह ऊँचे पेड़ों या इमारतों पर खुले में केवल एक ही छत्ता लगाती हैं । मधु जमा करने में दूसरी किस्में इसकी बराबरी नहीं कर सकतीं । अंग्रेज़ी में इसे *एपिस डॉरसेटा एफ.* (Apis dorsata F.) कहते हैं । इसका डंक अधिक लंबा एवं अत्यंत विषैला होता है। यह प्राय: गरम स्थानों में रहती है। दूसरी प्रकार की मधुमक्खी को अंग्रेज़ी में *एपिस फ्लोरिया एफ.* कहते हैं। केवल इसी जाति की मधुमक्खियों को लोग पालते हैं । चीन और जापान की मधुमक्खियाँ भी इसी के अन्तर्गत आती हैं । यह मधुमक्खी आम तौर पर बंद अँधेरी जगहों में ही कई समांतर छत्ते लगाती है, जैसे पेड़ के खोखलों में , दीवार और छत के अंदर तथा चट्टानों की दरारों में। यह प्राकृतिक हालत में पाई जाती है । पुराने ढंग से लोग इसे मिट्टी के घड़ों , लकड़ी के संदूकों , तनों के खोखलों एवं दीवार की दरारों में पालते हैं। तीसरी प्रकार की मधुमक्खी को अंग्रेज़ी में *एपिस फ्लोरिया एफ.* कहते हैं। आम तौर पर इस मधुमक्खी को पोतींगा कहते हैं । इसका भी एक ही छोटा सा छत्ता होता है । यह झाड़ी या मकान की छतों पर रखी लकड़ियों आदि में अपना छत्ता लगाती है। इसके छत्ते से एक बार से अधिक से अधिक दो , तीन पाउंड तक शहद निकल आता है । इसका डंक छोटा एवं कम विषैला होता है । चौथी प्रकार की मधुमक्खी को अंग्रेज़ी में *मैलीपोना* या *डैमर* कहते हैं । यह मधुमक्खी अमरीका में अधिक पाई जाती है । अँधेरी जगहों में , जैसे पेड़ के खोखलों और दीवार की दरारों आदि में , यह अपना छत्ता बनाती है । इसके छत्तों से मधु बहुत ही कम मात्रा में प्राप्त होता है । इसका मधु आँख में लगाने के लिये अच्छा माना जाता है । मधुमक्षिकागृह के भीतर रहने वाली मधुमक्खियाँ कार्य तथा प्रकार के अनुसार तीन तरह की होती हैं रानी, श्रमिक और नर मधुमक्खी । रानी मधुमक्खी ही एकमात्र सारे गृह में अंडे देने वाली होती है । इसका काम दिन और रात अंडे देना ही होता है । श्रमिक और रानी का जन्म एक ही प्रकार के अंडे से होता है । जब भी श्रमिक मधुमक्खियाँ किसी लार्वे को रानी बनाना चाहती हैं, तो वे उसे एक विशेष प्रकार का भोजन खिलाना शुरू कर देती हैं । इस भोजन को अंग्रेज़ी में *रॉयल जैली* कहते हैं। वह लार्वा , जिसे अपने पूरे जीवनकाल तक यह भोजन खिलाया जाता है, रानी बन जाता है ।

अन्य लार्वे , जिन्हें यह भोजन पूरा नहीं मिल पाता है, श्रमिक बन जाते हैं । श्रमिक बनने वाले लार्वों को केवल दो तीन दिन तक ही *रॉयल जैली* दिया जाता है , फिर इनका पोषण एक साधारण भोजन द्वारा ही किया जाता है । श्रमिक मधुमक्खियाँ मधुमक्षिकागृह में सबसे अधिक संख्या में होती हैं। इनके पेट पर कई समांतर धारियाँ होती हैं। डंक मारने वाली यही मधुमक्खी होती है। इन मधुमक्खियों की अधिकता पर ही शहद जमा करने की मात्रा भी निर्भर करती है । मधुमक्षिकगृह के अंदर और बाहर का भी सभी कार्य श्रमिक मधुमक्खियाँ ही करती हैं । श्रमिक मधुमक्खी का डंक आरीनुमा होता है । जब वह डंक मारती है, तो डंक मनुष्य के शरीर में गड़ा ही रह जाता है। कुछ समय बाद वह श्रमिक मधुमक्खी मर जाती है । मधुमक्खी के डंक लगने से शरीर में सूजन हो जाती है और दर्द भी होता है , पर इसका जहर हानिकारक नहीं होता । गठिया, जोड़ों के दर्द आदि के लिये इसे उपयोगी समझा जाता है । श्रमिक मधुमक्खी की आयु यों तो चार , पाँच माह तक की होती है , लेकिन जब उन्हें काम अधिक करना पड़ता है, तब वे कठिनाई से पाँच , छह सप्ताह तक जीवित रह पाती हैं । नर मधुमक्खी का काम रानी का गर्भाधान करना होता है । इसे और कोई भी काम नहीं करना पड़ता । मधुमक्षिकागृह के अंदर ही वह छत्तों में जमा किया मधु खाता रहता है । दोपहर के समय यदि मौसम अच्छा हो, तो बाहर घूमने के लिये उड़कर चला जाता है । यह श्रमिक मधुमक्खी से कुछ बड़ा और रानी से छोटा होता है , इसके शरीर पर अधिक बाल होते हैं । सिर एवं सिर पेट काले , गोल एवं चपटे आकार के बने होते हैं। जब फूल काफ़ी खिले होते हैं तब मधुमक्षिकागृह में नर की संख्या बढ़ जाती है। जब फूल कम होते हैं और मधु भी छत्तों में अधिक नहीं होता, उस समय नर मधुमक्षिकागृह में बहुत ही कम या बिलकुल ही नहीं दिखाई पड़ते हैं । छत्ते की जिन कोठरियों में नर मधुमक्खियाँ पैदा होती हैं , वे श्रमिक मधुमक्खियों की कोठरियों से कुछ बड़ी होती हैं और उन्हें छत्ते के निचले भाग में ही बनाया जाता है । श्रमिक मधुमक्खियाँ रानी के गर्भाधान काल में नर मधुमक्खियों को पैदा होने देती हैं , उसके बाद वे स्वयं ही उन्हें मारकर समाप्त कर देती हैं ।

शहद के बाद दूसरा मूल्यवान तथा उपयोगी पदार्थ, जो मधुमक्खियों से मिलता है , वह 'मोम' है । इसी से वे अपने छत्ते बनाती हैं । मोम बनाने के लिये मधुमक्खियाँ पहले शहद खाती हैं । फिर उससे ग र्मी पैदा कर अपनी ग्रंथियों द्वारा छोटे छोटे मोम के टुकड़े बाहर निकालती हैं । प्रत्येक प्राणी की तरह मधुमक्खियों के भी अनेक शत्रु होते हैं। मधुमक्खियों के पालने वाले को उनका ज्ञान होना अति आवश्यक है , ताकि वह उनसे मधुमक्खियों की रक्षा कर सकें । इनके मुख्य शत्रु; मोमी पतिंगा या मोमी

कीड़ा, अंगलार, या बर्र, चींटी और चींटा , भालू, ड्रेगन फ्लाई, मकड़ी, बंदर और गिरगिट आदि होते हैं।

डीजल से निकलने वाले घातक तत्वों से मधुमक्खियों की सूंघने और स्मरण शक्ति तथा परागकण क्षमता कम हो रही है। वैज्ञानिक पत्रिका 'द नेचर' में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन के साऊथैम्पटन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने अपने शोध में पाया कि डीजल से निकलने वाले धुंए का मधुमक्खियों की सूंघने तथा फूलों को पहचानने की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस शोध में शामिल एक वैज्ञानिक ट्रेसी न्यूमैन ने बताया कि बढ़ते प्रदूषण तथा धुंए से मधुमक्खियों की परागकण प्रक्रिया पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार परागण करने वाले जीव जैसे तितली, भौंरा तथा अन्य अर्थव्यवस्था में 203 अरब डॉलर का योगदान करते हैं। मधुमक्खियों पर पड़ते इस विपरीत प्रभाव के मद्देनजर यूरोपीय संघ के नेताओं ने स्विटजरलैंड तथा जर्मनी द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले कीटनाशकों तथा अन्य रसायनों पर दो वर्षों का प्रतिबंध लगाने को कहा था।

कृषि का लाभ दायक कीट : लाक्षा कीट

(Lac insect –*Laccifer lacca*)

शालिनी भोवते

वानिकी अनुसन्धान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिंदवाडा

लाक्षा कीट की उत्पती संस्कृत के लाक्षा शब्द से हुई है / संभवतः लाखो किटो से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम लाक्षा पडा है / लाक्षा कीट हेमिपटेरा गण होमोप्टेरा उपगण तथा लासिफेरिडी कुल का है / इस कीट का उल्लेख वेदों एव महाभारत आदि जैसे प्राचीन ग्रंथो मे आया है / लाख एक प्राकृतिक राल हैं , जो इस कीट के द्वारा प्रकृति के वरदान के रूप में प्राप्त होती है / इस कीट के शरीर में स्थित विशेष प्रकार की ग्रंथियो द्वारा अर्धद्रव के रूप में लाख पदार्थ ग्रसित होता है / वायु के संपर्क में आने से यह ठोस होकर लाल या बादामी रंग का हो जाता है / लाख का उत्पादन अधिकांशत: मादा कीटो द्वारा ही होता है /

लाख पाकिस्तान , भारत, लंका, थाईलैंड, इंडोचायना, एव् जावा में पाया जाता है / संसार भर में सबसे अधिक लगभग ८०% लाख का उत्पादन भारत में होता है / चमड़े के रूप में इसका निर्यात कर करोडो रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है / इसका उपयोग बिजली के सामान , वार्निस, चूड़ी तथा खिलौने बनाने में किया जाता है / भारत में लगभग लाक्षा किट की १४ जातीयां पाई जाती है /

पहचान

इस कीट की मादा लाल रंग की लगभग १.५ मी.मी. लम्बी होती है / यह एक स्थान में चिपटी रहती है और पेड़ की टहनियों से रस चूसकर लाख ग्रंथियो द्वारा लाख का उत्पादन करती है / नर कीट भी लाल रंग के होते/ इनकें शरीर की बनावट मादा कीट के भांती ही होती है / ये पंखहीन, पंखयुक्त दो प्रकार के होते है / नर कीटो का जीवनकाल ६२ से ९२ घंटेका होता है /

लाक्षा कीट

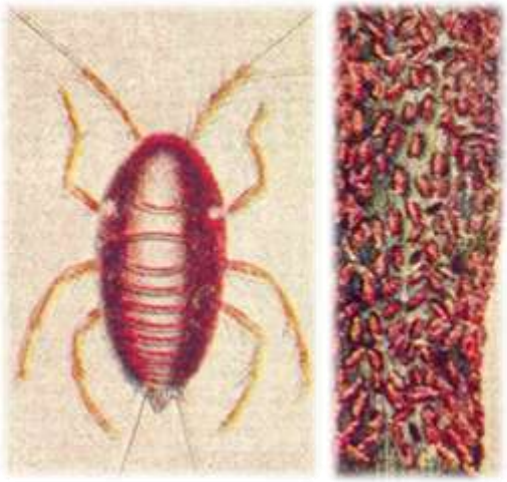

जीवनवृत्त

वयस्क मादा कीट लाक्षा कोशिका के अंदर ३०० अंडे देती है /अंडस्फोटन ७-१० दिनों में पूर्ण होता है /यह लाख को स्त्रावित कर के एक खोल का निर्माण कर लेते है / वयस्क होने पर कीट अपने लाक्षा कोशिका को छोडकर बाहर निकल जाते है , और मादा कीटो के साथ संयुगमन करते है / और नरकीट की मृत्यु हो जाती है / संयुगमन के पश्चात मादा कीट का आकार बड़ा हो जाता है /तथा उसकी लाख उत्पन्न करने की क्षमता भी बढ़ जाती है /मादा कीट अपने लाक्षा कोशिका के अंदर ही रहती है /

लाख उद्योग

लाख का उद्योग भारत में प्राचीन काल से है / वर्तमान में अधिक लाख का उत्पादन बिहार , मधयप्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, झारखंड एव अल्प मात्रा में अन्य राज्यों में होता है /

यह कीट वर्ष में दो जीवन चक्र पुरे करते है / जिसमे दो लाख की फसल द्वारा उपज मिलती है /

साधारणतः तीन लाख कीटो पर एक किलो लाख राल के रूप में उत्पादित होता है/ उपयुक्त जलवायू परिस्थितियो मे यह कीट पेड़ की कुछ प्रजातियों पर पनपते है /लाख के दो उपभेद पाये जाते है/ जिसे रंगीनी एव् कुसमी कहा जाता है/

बबुल, पीपल, साल, खैर, बेर, अरहर इत्यादी लाख के पोषक पौधे है / हमारे देश में मुख्य होस्ट प्लांट्स पलास (*Butea monosperma*) और बेर (*Zizyphus mauritiana*) है, जिसमे 'रंगीनी' उपभेद (strain) एव कुसुम (*Schleichera oleosa*) होस्ट के लिए 'कुसमी' उपभेद (strain) पाये जाते है / इन पर किसान साल भर में दो बार फसल ले सकते है जिससे वे आर्थिक रूप से मजबूत हो सकते है /

वर्तमान में फ्लेमिन्जिया सेमिअलाटा (*Flemingia semialata)*, एक जंगली, तेजी से बढनेवालीं लाख होस्ट प्रजाती, सर्दियों के मौसम में कुसमी स्ट्रेन के फसल के लिए उपयुक्त पाई गई है /साथ-साथ फ्लेमिन्जिया सेमिअलाटा लाख की वैश्विक मांग भी बढ़ रही है/

कुसुम के पेड़ पर जमा हुआ लाख

लाख उत्पादन विधि-

१)उपयुक्त स्थानका चयन किया जाता है ताकि वहा पोषक पौधे प्रचुर मात्रा में लगाये जा सके /

२)पोषक पौधो की छटाई की जाती है ताकि लाक्षा कीटो को भोजन प्रचुर मात्रा में मिलता रहे /

३)लाख कीट वाली काटी गई टहनियों को नए वृक्ष की कोमल टहनियोसे से बांध देते है /मादा कीट अंड देकर मर जाती है , और अरभक बाहर निकलकर नई शाखाओ में अपना स्थान बना लेते है एव राल का उत्पादन करते रहते है / पेडों पर ब्रूड लाख के संक्रमण के बाद फसल कटाई के समय तक ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नहीं होती /

४) फसल काटने के बाद 'ब्रूड लाख' के रूप में काम करने के लिए एक हिस्से को रख दिया जाता है ,बाकी टहनियों के टुकड़े करके बाजार में 'स्टिक लाख' के रूप में कृषको द्वारा बेचा जाता है / इस प्रकार ग्रामीणवासियों / अदिवासियोंको अतिरिक्त आय मिल जाती है / 'स्टिक लाख' की गुणवत्ता एव मुल्य अलग -अलग कारणों पर निर्भर करती है/ जैसे ब्रूड लाख होस्ट पेड़ , जलवायु परिस्थितियां , कटाई का मौसम एव संग्रहण आदी /

टहनी में लगी लाख को 'ब्रूड' लाख कहते है /इसे चाकू से या अन्य किसी चीज से खुरचकर निकल लेते है / एवं जल में धोकर छायामें सुखाते है / इसे 'सीड' लाख कहते है / इससे चपड़ा ऑटोक्लेव्ह विधि से तैयार किया जाता है/ एवं विभिन्न कार्यों में उसे उपयोग में लाया जाता है /

'रागिनी' स्ट्रेन के प्रमुख दो फसल होते है / 'कटकी' एव 'बैसाखी' फसल /

कटकी फसल - लाख के लार्वा जून से जुलाई में इनाक्युलेट किये जाते है/ नरकीट अगस्त -सितंबर में उभर आते है / मादा कीट अक्टूम्बर – नवंबर में झुंड में लार्वा को जन्म देते है, और फसल कार्तिक (अक्टूम्बर – नवंबर) में काटी जाती है/

बैसाखी फसल - कटकी फसल द्वारा उत्पादित लार्वा अक्टूम्बर – नवंबर में इनाक्युलेट किये जाते है / नर कीट फरवरी - मार्च में उभर आते है / मादा कीट जून -जुलाई में झुंड में लार्वा को जन्म देते है , और फसल बैसाखी (अप्रैल-मई) में काटी जाती है/

सीड लाख

'कुसमी' स्ट्रेन के प्रमुख दो फसल होते है / 'अगनी' एवं 'जेथवी' फसल /

अगनी फसल - लाख के लार्वा जून से जुलाई में इनाक्युलेट किये जाते है / नरकीट सितंबर में उभर आते है / मादा कीट जनवरी-फरवरी में झुंड में लार्वा को जन्म देते है , और अगनी फसल (दिसंबर - जनवरी)में काटी जाती है /

जेथवी फसल - अगनी फसल से प्राप्त लार्वा जनवरी-फरवरी में इनाक्युलेट किये जाते है / नरकीट मार्च - अप्रैल में उभर आते है / मादा कीट जून -जुलाई में झुंड में लार्वा को जन्म देते है , और फसल जेथवी जून -जुलाई में काटी जाती है/

रंगिनी फस लों में बैसाखी , कटकी फसल की तुलना में अच्छी होती है एव कुसमी फसलों में अगनी , जेथवी फसल से अच्छी होती है / बेर से प्राप्त हुआ बैसाखी लाख पलास से प्राप्त हुए लाख से ज्यादा कीमती होता है /

लाख की खेती का महत्व :

१) पहाड़ी इलाको में रहने वाले आदिवासीयों /गरीब किसानोंका आजिविका का एक अच्छा स्त्रोत है/

२) बेर के वृक्षारोपणमें कुसमी लाख की खेती करके ३-५ लाख रूपये प्रति वर्ष / हेक्टर शुद्ध लाभ ले सकते है/

३) लाख की खेती में महिलाऔं की भी महत्वपूर्ण भागीदारी हो सकती है , एव परिस्थितिकी तंत्र विकास में भी मदत हो सकती है /

४) पर्यावरण स्वस्थ रखने मे मदत होती है /

५) रोजगार सृजन का अच्छा स्त्रोत है /

६) भारतीय कुसमी लाख की गुणवत्ता दुनिया में सबसे बेहतर है /

७) लाख प्राकृतिक राल का प्रमुख स्त्रोत है / इसकी उच्च निर्यात क्षमता भी है / वर्तमान में ७५% उत्पादन निर्यात किया जाता है /

Orange Blister Beetle : A Minor Pest

Kritish De
West Bengal

"Coleoptera" is the largest order (in terms of number of species) in the class insecta (actually it is the largest order of the animal kingdom). Members of this order are commonly called "Beetles" which are very common to us. The beetles of the family Meloidae are commonly known as Blister Beetle. They are so called because they secrete a compound containing cantharidin (a terpenoid) when disturbed which produces blisters on human skin upon contact. The orange blister beetle *Mylabris pustulata* (Thunberg, 1821) is an important member of this group. This insect plays beneficial role during larval stage while harmful during adult stage.

Systematic Position :

Kingdom	:	Animalia
Phylum	:	Arthropoda
Class	:	Insecta
Order	:	Coleoptera
Suborder	:	Polyphaga
Infraorder	:	Cucujiformia
Superfamily	:	Tenebrionoidea
Family	:	Meloidae
Genus	:	*Mylabris* (Fabricius, 1775)
Species	:	*pustulata* (Thunberg, 1821)

Distribution : This insect is widespread in South Asia.

Morphological Description of Adult :

Body is 20 – 25 mm in length and divided into head, thorax and abdomen which are black in color. One pair compound eye present on head. Mouth parts are biting and chewing type. Antennae are elongated and clavate (consists of segments which are gradually wider towards the anterior). A very fine elongated groove present on the dorsal side of the thorax. Three pairs of externally jointed legs are present in thorax. Tarsus of each leg with five segments, last segment has curved claw. Abdomen about two times longer than wide. First pair of wings modified to hard elytra which meet in mid dorsal straight line and completely cover dorsal part of abdomen. Second pair of wings helps in flying. Elytras are brightly colorful – band of black and orange/yellow colors are present alternately**.** Generally three black and two orange bands are present. On the first black band two orange/yellow round spots (one on each elytra) are present.

The Life Cycle :

Depending on the food quality, each female lays about 100-2000 eggs. Eggs are usually laid in the soil. There are 7 instar stages present in larva which include 4

different morphological types (hence they are called hypermetamorphic organism). These morphological types are planidium (1st instar), first grub (2nd to 5th instar), coarctate (6th instar) and second grub (7th instar). The planidium (1st instar), has three pair of legs and three claws on each foot, and is therefore called a triungulin (plural triungula). It feeds on eggs of Orthoptera, Lepidoptera and soft insects such as aphids. The first grub (2nd to 5th instar) is the primary feeding stage. The coarctate (6th instar) is a quiescent inster, adopted for overwintering o aestivation. It has thick, sclerotized cuticle. The second grub (7th instar) is a nonfeeding instar that precedes pupation. The second grub (7th instar) metamorphosed to pupa from which fully formed, sexually mature adult beetles emerge.

Feeding Behavior :

The larva (especially planidium) feeds on eggs of Orthoptera (grasshopper) and soft insects such as aphids. But the adult beetles feed on flower petals. These beetles are attracted to the brightly colored (especially red and yellow) flowers. They can also feed on tender foliage.

Impact on Agriculture, Horticulture and Forestry :

As the larva feeds on eggs of Orthoptera, Lepidoptera and soft insects such as aphids, the larval stage is beneficial in agriculture, horticulture and forestry. The adult feeds on reproductive parts of plants, they are harmful. Some plant families such as Convolvulaceae, Cucurbitaceae, Leguminosae, Malvaceae etc. are attacked by them. It is considered as minor pest of some agriculturally important plants such as pigeon pea and other pulses, bhendi, groundnut, cotton, grasses, etc.

Control Measures :

Chemical control may fail because the beetles are large, robust and highly mobile. But dusting earheads with endosulfan or carbaryl @ 10-15 kg/ha is effective. Synthetic pyrethroids may be used for a quick knock-down effect, but only when the blister beetle occurs in extremely high densities. Otherwise, synthetic pyrethroids will disrupt the efficiency of other eggplant IPM techniques. Research shows that integration of DD -136 nematode (*Steinernema felidae* which carries a bacterium, *Xenorhabdus nematophilus* in its intestine)) at 3x103 nematodes/ml with NPV of *Heliothis armigera* at 250 L.E./ha revealed

significant reduction of blister beetle. However, manual picking and destruction of adult blister beetles is the only practical control measure. As this insect is highly phototrophic, light trap may be used for this purpose.

References

1. Narayanan, K. and Mr. Gopalakrishnan, C. 1988. Microbial Control of *Heliothis armigera.* Technical Bulletin No.6. Published by Didector, Indian Institute of Horticultural Research. (Page : 32)
2. Raghavaiah, G. (Ed.) 2011 - 2012. Study Material, Course No: Ento 331, Pests of Crops and Their Management. Department of Entomology Agricultural College, Bapatla. Acharya N. G. Ranga Agricultural University.
3. Ranga Rao, G.V., and Shanower, T.G. 1999. Identification and Management of Pigeonpea and Chickpea Insect Pests in Asia. Information Bulletin no. 57. (In En. Summaries in En, Fr.) Patancheru, 502 324, A.P., India: International Crops Research Institute for the Semi-Arid Tropics. ISBN 92–9066–412–6 (Page : 40 - 40)
4. Schowalter, Timothy D. 2009. Insect Ecology : An Ecosystem Approach (2nd Ed.). Academic Press. (Page : 484 - 486)
5. Srinivasan R. 2009. Insect and mite pests on eggplant: a field guide for identification and management. AVRDC – The World Vegetable Center, Shanhua, Taiwan. AVRDC Publication No. 09 - 729. 64 p. (Page : Xlii - Xliii)
6. http://en.wikipedia.org/
7. http://www.nbaii.res.in/insectpests/Mylabris-pustulata.php

रेशम कीटपालन से जुड़ा जीविकापार्जन

डॉ. ममता पुरोहित एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

भारतीय परिधानों में धोती-कुर्ता एवं साड़ी का विशिष्ट स्थान है । पुरुष एवं महिला वर्ग की ये पोशाकें भारतीय संस्कृति की पहचान है । सूती एवं रेशमी वस्त्र सदियों से भारतीयों की पहली पसंद रहे हैं । पूजा-पाठ, धार्मिक अनुष्ठानो, शादी-विवाह एवं अन्य विशिष्ट अवसरों पर रेशमी वस्त्रों का महत्व सर्वमान्य हैं । संभ्रान्त परिवारों की पसंद व उनके आर्थिक स्तर का मानक 'कीमती रेशम' एक कीट की देन है । आमतौर पर हम कीड़ों को हानिकारक व जहरीला ही समझते हैं । कीड़ों को पालने की बात तो कभी सोच ही नहीं सकते है परन्तु कुछ कीट जैसे शहद बनाने वाली मधुमक्खी और रेशम बनाने वाला कीट दोनो ही लाभदायक होने के साथ-साथ व्यापारिक महत्व के हैं और सैकड़ों परिवारों की जीवीकापार्जन का साधन है । संत तुलसीलदास जी द्वारा रचित रामचरित मानस में रेशम कीट के महत्व में यह चौपाई लिखी गई है -

पाट कीट तें होई, तेहि ते पाटम्बर रुचिर ।
कृमि पालहि सबु कोई परम अपावन प्राण सम ॥
(85 ख उत्तरकाण्ड)

अर्थात रेशम कीड़े के द्वारा बनता है जिससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते है इसी कारण उस अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं ।

मध्य प्रदेश सरकार द्वारा प्रोत्साहित एवं पोषित रेशम कीट पालन योजना ने वन अंचल के भूमिहीन किसानो एवं गरीब परिवारों के सैकड़ों मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराया गया है । प्रस्तुत आलेख में जिला – जबलपुर एवं नरसिंहपुर के शासकीय रेशम केन्द्रों द्वारा किस तरह रेशम कीट से रेशम उत्पादन किया जा रहा है इसे लिपिबद्ध किया गया है । मध्य प्रदेश सरकार द्वारा केन्द्रीय तसर अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, रांची के शोध परिणामों के आधार पर जंगलो में प्राकृतिक रुप से उगने वाले साजा (***टरमीनेलिया टोमेनटोसा***) एवं अर्जुन (***टरमीनेलिया अर्जुना***) के पेड़ो पर रेशम कीटपालन एवं ककून उत्पादन के लिये एकीकृत प्रोद्यौगिकी विकसित की गई है जिसका लाभ वन अंचल के सैकड़ो भूमिहीन हितग्राहियों को मिल रहा है । इस प्रोद्योगिकी के लिये वनो में ऐसे स्थान पर रेशम केन्द्र की स्थापना की जाती है जहाँ साजा या अर्जुन के पेड़ बहुतायत में उपलब्ध हैं ।

प्रशिक्षण व्यवस्था

रेशम विभाग द्वारा रेशम (टसर) कीट पालन हेतु इच्छुक हितग्राहियों अर्थात भूमिहीन व्यक्तियों को कीट पालन एवं ककून उत्पादन का प्रशिक्षण दिया जाता है । प्रशिक्षित हितग्राहियों को कीट की प्रत्येक फसल के लिये वैज्ञानिक पद्धति से विकसित किये गये अंडे उपलब्ध कराये जाते हैं जिन्हे रेशम (टसर) स्वस्थ्य समूह कहते हैं । अंडो से कीट पालन कार्य के दौरान तकनीकी मार्गदर्शन दिया जाता है जिससे अधिक से अधिक स्वस्थ्य ककून का उत्पादन हो सके ।

कीटपालन स्थल का चयन

कीट पालन हेतु ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिये जो ऊँचा, खुला, पानी के निकास वाला एवं अर्जुन (***टरमीनेलिया अर्जुना***) एवं साजा (***टरमीनेलिया टोमेनटोसा***) पेड़ोकी सघनता वाला हो । ऐसा स्थान जहाँ पानी जमा होता हो, का चुनाव कीटपालन हेतु नहीं करना चाहिए क्योंकि पानी भराव वाले स्थान पर रेशम कीटों के रोगग्रस्त होने की अंशका बढ़ जाती है । पौधों के नीचे गिरे हुए रेशम कीट मलको एवं रेशम कीट अवशेष को झाड़ू लगाकर कीट पालन स्थल से दूर सावधानी पूर्वक जमीन में दबा देना चाहिए क्योंकि ये गौण संक्रमण के मुख्य स्त्रोत है ।

कीट पालन हेतु पौधों का चयन एवं रख-रखावः- कीटपालन स्थल का चुनाव करते समय इस बात का विशेष

ध्यान रखना चाहिये कि अर्जुन (***टरमीनेलिया अर्जुना***) एवं साजा (***टरमीनेलिया टोमेनटोसा***) के स्वस्थ्य व अधिक पत्तियों वाले 4 से 6 फीट ऊंचे पेड़ हों। पेड़ों के नीचे 3 फीट चौड़ा थाल बनाकर साफ-सफाई कर देना चाहिए जिससे चीटी व अन्य कीड़े –मकोड़े चयनित स्थल पर न रहें। पेड़ो की शाखायें जो जमीन छूती हों उन्हें काट कर अलग कर देना चाहिये। पेड़ के तने पर घांस के छल्ले (रिंग) बांध देना चाहिये ताकि अन्य कीड़े-मकोड़े पेड़ पर न चढ़ सकें। ब्लीचिंग पाउडर का छिड़काव 4-5 दिनों के अन्तराल पर करते रहना चाहिये।

रेशम (टसर) के स्वस्थ्य समूह (अंडे) प्राप्त करना

हैचिंग के दो दिन पूर्व शासकीय रेशम (टसर) केन्द्रों से रेशम (टसर) के स्वस्थ्य समूह (अंडे) प्राप्त कर नमी वाली जगह में पतली पर्त में रखना चाहिये। एक स्वस्थ्य स्मूह में लगभग 250 अंडे होते है। एक हितग्राही को लगभग 200 स्वस्थ्य अंडो का समूह दिया जाता है जिससे वह आसानी से कीट पालन कर लेता है। अंडों से 9वें दिन कीट निकलना शुरु हो जाते है। प्रायः सुबह के समय ही अंडों से कीट निकलते हैं। अण्डा स्फुटन की सर्वाधिक दर (90-95 %) प्राप्त करने के लिये अण्डों का स्फुटन (हैचिंग) 28 से 30 डिग्री सेन्टी ग्रेड तापमान एवं 70% से 80 % आपेक्षिक आद्रता पर करना चाहिये।

रेशम (टसर) स्वस्थ्य समूह की दर

इच्छुक हितग्राही द्वारा शासकीय रेशम (कोसा) बीज केन्द्रों से रु. 1.50/- प्रति स्वस्थ्य समूह (अंडे) क्रय किया जा सकता है।

पेड़ों/झाड़ियों पर ब्रशिंग करना

कीटपालन के समय परभक्षी कीट एवं हानिकारक जीव-जन्तुओं से होने वाले नुकसान को कम करने के लिये झोपडी या नायलोन नेट के अन्दर कीटपालन करना लाभप्रद है। अर्जुन (***टरमीनेलिया अर्जुना***) एवं साजा (***टरमीनेलिया टोमेनटोसा***) के पेड़ों या झाडियों के ऊपर 20x10 फुट की घांस की झोपड़ी बनाकर या 40'x30'x10' आकार की नायलोन की नेट लगाकर पेड़ों / झाड़ियों को ढ़क दिया जाता हैं। उपरोक्त आकार के एक नायलोन नेट के अन्दर 4'x4' फीट के अन्तर पर लगे 70 पेड़ आ सकते है। नव प्रस्फुटित कीटों को पेड़ों पर छोड़ दिया जाता हैं। कीट पेड़ की पत्तियाँ खाते हुए क्रमशः एक से दूरी अवस्था में बढ़ते जाते है।

कीट पालन

रेशम कीट पालन का कार्य माह जून-जूलाई से प्रारंभ होकर माह दिसंबर – जनवरी तक चलता है। इस तरह एक वर्ष की अवधि में ककूनो की 3 फसलें प्राप्त होती है। प्रत्येक फसल में अधिक से अधिक ककून (रेशम) उत्पादन हेतु उचित समय पर कीटपालन अत्यन्त आवश्यक हैं। कीट पालन की शुरुआत अंडों से नव प्रस्फुटित कीटों के झाड़न से होती हैं जिसे ब्रशिंग कहते हैं।

ब्रंशिग कार्यक्रम इस प्रकार होता है :

क्र.	फसल	माह	कीटपालन में लगने वाला समय	अंडों की संख्या	उत्पादित ककून की संख्या	दर प्रति समूह	प्राप्त आय रुपयों में
1	प्रथम	जून-जुलाई	30-35 दिन	200	6000	440/-	2640/-
2	द्वितीय	सितम्बर-अक्टूबर	40-50 दिन	200	10000	610/-	6100/-
3	तृतीय	नवम्बर-जनवरी	80-90 दिन	200	8000	440/-	3520/-
				600	24000	-	12260/-

इस प्रकार प्रति परिवार प्रति हेक्टेयर रुपये 12260/- की आय वन अंचलों में रहने वाले भूमिहीन परिवारों को बिना किसी लागत के प्राप्त हो जाती हैं । उपरोक्त ब्रंशिंग कार्यक्रम में भौगोलिक एवं आंचलिक दशाओं के अनुसार आवश्यकतानुसार आंशिक फेर बदल किया जा सकता है ।

रेशम कीटपालन की मुख्य फसल

रेशम कीट की मुख्य फ्सल जून-जुलाई से अक्टूबर माह में ली जाती है जिसमें 30 से 50 दिन का समय लगता है तथा हितग्राही को 6000 से 10000 तक कोसाफल (ककून) प्राप्त होते है । ककून विक्रय से उसे रु. 2640 /- से 6100/- तक की आय बिना लागत हो जाती है ।

रेशम कीटों का दूसरे पौधों पर स्थानान्तरण

जब रेशम कीट धीरे-धीरे बड़ा होने लगता है तो उसकी पत्ती खाने की मात्रा भी बढ़ जाती है । जब एक पेड़ की पत्तियाँ समाप्त हो जाती है तो इनका दूसरे पेड़ पर स्थानान्तरण करना पड़ता है । स्थानान्तरण के लिये कीटों को हाँथ से न पकड़कर उन्हे छोटी-छोटी शाखाओं सहित शाखाओं को काटकर दूसरे पेड़ में अच्छे से टेग (रख) देते है । यह ध्यान रखना चाहिये कि कीट कम से कम पेड़ों पर एक अवस्था में एक ही बार ट्रांसफर करना पड़े । स्थानन्तरण के समय कीटों को पेड़ो पर समान रुप से वितरित करना चाहिए । एक पेड़ में रेशम कीटों की संख्या यथोचित रखना चाहिए ताकि स्थानान्तरण कम से कम करना पड़े ।

कोसाफल (ककून) बनना

कीट द्वारा कोसाफल (ककून) बनाने की अवस्था में पेड़ों / झाड़ियों पर पर्याप्त मात्रा में पत्तियाँ होनी चाहिये ताकि कीट पत्तियों में छिपकर बिना बाहरी व्यवधान के सरलता से कोसाफल (ककून) बना सके । अच्छे एवं स्वस्थ्य कोसाफल (ककून) बनने के लिये कोसाफल बनते समय 72 घंटे तक कोई भी बाहरी व्यवधान बिलकुल नही होना चाहिये ।

कोसाफल (ककून) तोड़ना एवं भंडारण

कोसा बनने के 6वें दिन (शंखी/प्यूपा बनने के बाद) कोसाफल की बाहरी खोल कड़ी हो जाती है तब इसे शाखा से डन्ठल सहित काट लिया जाता है । कोसों पर चिपकी हुई पत्तियाँ साफ कर 10 दिन के अन्दर शासकीय रेशम केन्द्र जहाँ कोसाफल क्रय किया जाता है पहुँचा दिया जाता है । कमजोर, चूहों से क्षतिग्रस्त , अन्य तरह से क्षतिअग्रस्त कोसों (कोसाफलों) को छाटकर अलग रखना चाहिये । बीज योग्य कोसाफलों (ककून) की माला; जिससें एक माला में 100 कोसाफल (ककून) होते है को बीजगार भवन में अनुकूल परिस्थितियों में परिरक्षित करना चाहिए । वाणिज्यिक कोसों को सूर्य के प्रकाश में सुखाकर बोरों में हल्के-फुल्के भरकर रखना चाहिए ताकि लंबे समय तक उनका भंडारण किया जा सके ।

कीटपालन उपकरण का रख-रखाव

सभी कीटपालन उपकरण जैसे ट्रे, चाकू, हंसिया आदि को फार्मेलिन के 2 प्रतिशत घोल में डुबाकर रेगाणु रहित कर लेना चाहिए । यह घोल बाजार में उपलब्ध वाणिज्यिक फार्मेलिन (प्रभावी सांद्रता लगभग 40 प्रतिशत) के एक भाग में 15 भाग पानी मिलाकर बनाया जा सकता है ।

क्रय-विक्रय व्यावस्था

शत प्रतिशत उत्पादित ककून रेशम विभाग द्वारा क्रय किये जाते हैं जिससे रेशम (टसर) कीट पालने हितग्राही को उसी के गाँव (वन अंचल) में ककून बेचने की सुविधा प्राप्त हो जाती है । रेशम विभाग द्वारा हितग्राही से सीधे ककून खरीदने के कारण उसे अपने समय और श्रम का उचित आर्थिक लाभ मिल जाता हैं ।

रेशम (टसर) बीज की दर

रेशम विभाग द्वारा रेशम (टसर या कोसा) बीज हेतु बीज की निर्धारित की गई दर इस प्रकार है -

- ए ग्रेड – शेलभार (ककून) 1.4 ग्राम या अधिक = रु. 965/- प्रति हजार

- बी ग्रेड- शेलभार (ककून) 1.2 ग्राम से 1.3 ग्राम = रु. 890/- प्रति हजार
- सी ग्रेड- शेलभार (ककून) 0.85 ग्राम से 1.19 ग्राम = रु. 750/- प्रति हजार

अर्थात रेशम कीटपालकों द्वारा स्वस्थ्य एवं गुणवत्ता युक्त कोसाफलों का उत्पादन करने पर आय में और अधिक वृद्धि की जा सकती है।

सुरक्षित रेशम(टसर) कीटपालन संबंधी विशेष जानकारी

कीटपालन स्थल पर पेड़ का गोंद, आटा एवं गुड़ तीनों को मिलाकर एवं पकाकर इस लेप को सीको पर लगाकर अर्जुन या साजा के पेड़ो पर खोंस देने से रेशम कीट को नुकसान पहुँचाने वाला कीड़ा सूजिया (केन्थीकोना) इस लेप में चिपककर मर जाता है जिससे रेशम कीट पालन सुरक्षित हो जाता है।

Natural Resource Management by *Apatani* tribe in Arunachal Pradesh

Ngilyang Tam, IFS
Arunachal Pradesh Pollution Control Board

The State of Arunachal Pradesh covering an area of 83,743 sq km with undulating topography, extreme variations in altitude from 100 to 6,500 m and climatic conditions, is endowed with rich biodiversity. The state is home to 26 major tribes and about 110 ethnic groups. Among them, some are *Adi, Galo, Nyishi, Monpa, Mishmi, Apatani, Aka, Mizi, Tagin, Tangsa, Nocte* and *Wancho*.

The majority of the mountainous population of Arunachal Pradesh falling under Eastern Himalayan region depends upon agricultural & forest resources for their livelihood, which these communities sustain with their rich and varied traditional ecological knowledge. Though the forest is the prime land use, agriculture is the mainstay of tribal community, where more than 80% of the total population largely depends on it. The forest diversity of the state is also intricately linked with farming and livestock domestication, which provides substantial base to meet the needs of food, firewood, timber & ethno-medicine and fodder, helping sustain the cultural diversity of tribal communities.

LANDSCAPE OF APATANI VALLEY

Ziro, a scenic valley, is the home of the *Apatani* tribe whose unique land use pattern, resource management and conservation practices have made them a focal point of attraction.

The town is the district headquarters of the Lower Subansiri district and is popularly known as “Rice Bowl of Subansiri”. It has 35 villages, with a population of around 36000 and a density of 23 persons per sq km (Census, 2001). The valley has an area of more than 1050 sq km, of which about 33 sq km is rice cultivated land, while the rest is under natural forest, artificial plantations and human settlements indicating a near perfect ecological equilibrium. *Apatanis* are considered as efficient resource managers with rich traditional ecological knowledge and conservationists by nature, thereby attracting the attention of UNESCO for the Ziro valley was considered as World Heritage Site.

FORESTS RESOURCES MANAGEMENT

Shifting cultivation is one of the most prevalent land use system and one of the causes of forest degradation in the north-eastern region of India. However some tribes like the *Apatanis* have developed important agro-system types e.g. home gardens and wet rice cultivation. Shifting or Jhum cultivation is not practiced around human settlements of *Apatanis.* The *Apatani* village ecosystem is an excellent example of economic-sufficiency of a traditional agricultural society. The village settlement pattern of the *Apatanis* follows a very scientific line. The house sites are always developed above the fields and gardens. Thus the human and animal biodegradable wastes swiftly drain into the rice fields and gardens by the rain water through streams and rills. Therefore, the fertility of the soil of the fields and gardens are intact on one hand and on the other, no chemical fertilizers are required for the agricultural fields. In other words, completely organic agricultural output is produced in their fields.

Once upon a time, *Apatani* valley was believed to be having sporadic mountains, hills and marshy land. It was the sincere and hard working effort of their ancestors to make it suitable for wet rice cultivation. Ever since, most of the *Apatani* farmers practice rice-cum-fish cultivation with finger millet on the bunds (risers) over an area of about 3300 ha, while around 1000 ha is under rain-fed upland farming. The integration of fish-cum-rice culture is unique in nature and economically & environmentally sustainable. The wet rice fields are irrigated through well-managed canal systems by diverting numerous streams originating in the nearby forests into single canal and through channels each agricultural field is connected with bamboo or pinewood pipe.

Paddy fields and background of dense forests

Preparatory phase for paddy and fish culture

Socio-economy of the community is mainly based upon agriculture, fishery and bamboo resources, though majority of its land area is under primary and well managed secondary forests which more appropriately can be termed as sacred groves. The blue pine and bamboo plantations on the fringes of a wide mosaic of wet rice fields surrounded by thickly forested mountains on all sides form a picturesque landscape. Besides, agriculture they rear Mithun (*Bos frontalis)*, cattle, pig and poultry to supplement the traditional economy.

The forests of Ziro valley can be categorized under four broad categories based on altitudinal zones. The first zone is just above wet rice cultivation areas in the form of monoculture of bamboo or mixed vegetation with bamboo, pine and *Castanopsis* spp. The second zone consists of *Pinus wallichiana* plantation with *Pyrus* and *Prunus* spp., followed by third zone, which is generally a monoculture of *Castanopsis* spp or sometimes mixed with *Myrica* and *Quercus* spp. The first and second zones of forests are invariably planted and in higher reaches some may be naturalized after many years of plantation practice.

The fourth zone is found above 1000m altitude with conifer and broad leaved species commonly found in sub tropical and temperate areas of Eastern Himalayan region. From importance and dependency point of view, bamboo and *Castanopsis* spp forests are most significant for *Apatanis.* The forests are maintained not only for meeting the requirements of fuelwood, wild edible fruits, fodder and timber, but are also used for other socio-cultural activities and rituals. The *Sansung* (individual forests) are managed for fuelwood and other materials used during rituals and other important ceremonies like *Myoko, Murung, Subu* etc. Besides, it also acts as a repository of various ethno-medico-botanical resources, many of which are still fully understood. There are also community forests, which generally have sacred groves to meet the religious demands of the local community. These are completely protected and no kind of extraction is allowed due to fear of displeasure of local God/deity.

Bamboo plantations are mainly dominated by *Phyllostachys bambusoides* (locally called Bije). Maintenance and plantation of bamboo is done with great care. Rhizomes are planted during Jan-Feb, weeding and proper selective harvesting of culms is done to achieve greater yield. Maturation of bamboo is recognized through development of fungus on its surface of main stem and is harvested normally every third year from the established bamboo garden.

Forest type with important plant species under management in *Apatani* plateau

Forest	Species	Major role
1.Bamboo plantation		
a. Monoculture	*Phyllostachys bambusoides*	Fuel wood, food, handicraft, housing and ritualistic materials.
b. Bamboo + pine	*P.bambusoides, Pinus wallichina, Alnus nepalensis, etc.*	Timber, fuel wood, food, handicraft, housing and ritualistic materials.
c. Bamboo+ Castanopsis	*P. bambusoides, Castanopsis indica, C. hystrix, C. tribuoide, A. nepalensis, Dendrocalamus hamiltoni, etc*	Timber, fuel wood, food, handicraft, housing and ritualistic materials.
2. Pine	*P. wallichina, Pyrus pashia, Prunus nepalensis, etc.*	Timber, fuel wood and wild edible fruits.
3. Castanopsis	*C.indica, C.hystrix, C.tribuoides, A. nepalensis, Myrica esculenta*	Timber, fuel wood, ritualistic materials and wild edible fruits.
4. Mixed Forest **Sub-tropical & Temperate**	*Quercus lanata, C.tribuloides, C. indica, C. hystrix, Michelia champaca, Terminalia chebula, Exbucklandia populnea, Helicia robusta, Spondias axillaris, Illicium griffithi, Actinidia callosa (wild kiwi), Dendrocalamus hamiltonii, Chimonobambusa spp. Taxus baccata, Pinus wallichiana, Cephalotaxus spp. Tsuga dumosa, Rhododendron arboretum, Pleioblastus simony, Arundinaria sp. Etc.*	Timber, fuel wood, ritualistic materials, handicraft, wild edible fruits and herbal medicine.

Source: Mihin Dollo, P.K. Samal, R.C. Sundriyal and Kireet Kumar. 2009. **Environmentally sustainable traditional natural resource management and conservation in Ziro valley, Arunachal Pradesh, India. *Journal of American Science; 5(5):41-52.***

A View of local Bamboo & Blue Pine plantation with other trees

Improved fencing of Bamboo Plantation with Iron grilled gate for protection

FUTURE SUSTENACE

There is tremendous traditional ecological knowledge available with *Apatani* community of Arunachal Pradesh, which is based on age old working experiences and experimentations with local environment and biological resources. *Apatanis*, though famed for their agricultural practices, high rice yields and forest and bamboo plantations, quantification of this land and plantation based economy has received little attention. There is need for proper documentation, appreciation and understanding of these ecological practices, which can be used to develop future strategies for sustainable development of Himalayan region and for achieving millennium development goals of all round development of human beings with minimum damage to local biodiversity. Blending of such local traditional ecological knowledge with ever increasing modern scientific technology for the well being of local population, is to be done with great care to avoid any irreparable damage to the region's social and ecological setting.

जैवविविधता संरक्षण से ही पर्यावरण संरक्षण सम्भव

बाबूलाल दाहिया

सर्जना सामाजिक सांस्कृतीक एवं साहित्तीक संग

धरती में अनेक प्रकार के जन्तु है प्रकृति ने मनुष्य को भी एक जन्तु के रूप मे ही पैदा किया था क्यों की अन्य जन्तुओं की तरह मनुष्य की भी मूलवृत्ती वही भूंख भय और काम है। किन्तु क्या कारण है की अन्य जंन्तु तो आदिम अवस्था से उबर कर अब तक एक से 10 तक की गिनती तक नहीं सीख पाये वहीं सफलताओं के अनेक सोपान पार करते इस मनुष्य रूपी जन्तु के पदचाप दूसरे ग्रहों तक सुनाई देने लगे। उत्तर स्पष्ट है की उसने जो भी अनुभव एवं अनुसंधान किया उसे नई पीढी को बताया, नई पीढ़ी ने उसकी समीक्षा की परिस्थितियों मे आये परिवर्तन के कारण जो छोंड़ने लायक था उसे छोंड़ा औरशेष में अपने अनुभव एवं अनुसंधान जोड़ती चली गई। पर अब हद तो तब हो रही है जब मनुष्य ने अपने दो अदद फुरसत के हाथों और एक अदद बिलक्षण बुद्धि के बलबूते उस प्रकृति के नियमों को ही धता बताना शुरू कर दिया जिसका वह खुद ही एक घटक है। किन्तु मनुष्य कितना ही हांथ पैर चलाये पर घटक होने के नाते प्रकृति से अलग तो नहीं हो सकता ? जब की हमारे समाज चिंतक मनीषी हजारों वर्ष पहले उसे अगाह करते हुये कह चुके हैं कि ,, तुम भले ही प्रकृति के बिलक्षण प्राणी हो पर **अति सर्वत्र वर्जयेतु** इसलिये हद की सीमा रेखा को पार करना बुद्धिमानी नही नादानी ही होगी ,,। मुझे स्मरण है की पिछली शताब्दी में जब अविष्कार आया तो हम उसे ग्रहण कर फूले नही समाये और हर क्षेत्रों में लागू कर प्रकृति से अपनी दूरी बनाते चले गये पर अब पर्यावरण प्रदूषण के कारण जब जलवायु परिवर्तन की पदचाप स्पष्ट सुनाई देने लगी है एवं वर्षा गर्मी व शरद का ऋतु चक्र डगमगा रहा है तब सारा बुद्धजीवी वर्ग हांथ में हांथ रखे बैठा है। जैसे कुछ हुआ ही न हो। जिसे देखकर मुझे अपने कुल आचार्य पडित रामावतार शास्त्री जी का एक दृष्टान्त स्मरण हो आया कि ,,एक व्यक्ति को जब यमराज पकड़कर ले जाने लगे तो रोते गिड़गिड़ाते हुये वह कहने लगा कि ,, अभी मुझे मत ले जाओ घर में भोजन की व्यवस्था नहीं कर पाया , कपड़े भी खरीदना हैं बच्चे ग्रहस्थी नहीं सम्हाल पायेगें। बगैर चेतावनी आप कैसे पहुंच गये ? यमदूत ने कहा हम चेतावनी तो दे चुक है तुम नहीं समझे तो क्या करें ? वो बोला कब चेतावनी दी है ? मुझे कोई चेतावनी नही मिली।,, यमदूत ने कहा तुम्हारे बाल पके ? उसने कहा हां बाल तो पके हैं। उनने नें कहा दांत हिले ? तो उसनें कहा हां दांत हिले है और एक दो टूट भी गये हैं यमदतों ने कहा यह चेतावनी नहीं है तो क्या है। पर तुम नहीं समझे तो हम क्या करें ,, इसी तरह प्रकृति अतिवृष्टि अनावृष्टि उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुव का अधिक हिम पिघलना आदि अनेक प्रकार का संकेत हमें निरंतर दे रही है पर हम समझ ही नहीं रहे। हंसी तो तब आती है जब आज बिज्ञान के युग मे भी लोग अतिवृष्टि अनावृष्टि का निदान अवैज्ञानिक अनुष्ठानों द्वारा ही खोजना चाहते हैं। आज यह पर्यावरण असंतुलन हर क्षेत्र में अपना प्रभाव दिखानें लगा है। मै इधर तीन चार वर्षों से अक्सर आदिवासियों के बीच रहकर उनके रीति रिवाज परम्परा जीवनशैली एवं खान पान का अध्ययन किया है। पहले आदिवासियों के भोजन में आठ दस प्रकार के देशी अनाज, दस बारह प्रकार की जंगली भाजी तरकारी, सात आठ प्रकार के कंद एवं कई तरह के जंगली फल फूल शामिल थे। शिकार करना भी प्रतिबंधित न होने के कारण उनके इस मिले जुले खाद्य प्रदार्थ में अनेक पोषक तत्व शामिल थे। पर व्यापार संस्कृति से संसाधनों की लूट के चलते अब आदिवासियों का भोजन भी दो तीन अनाजों के बीच ही सिमटता जा रहा है। और वह भी पी.डी..एस से प्राप्त कई वर्ष पुराने गेंहूं चावल में। इसलिये आंकडें भी गवाही दे रहे हैं की

आज सबसे अधिक कुपोषण का शिकार इसी वर्ग की धात्री मां एवं छोटे छोटे बच्चे है। पर यह समुदाय भी वास्तविक कारण के तह में न पहुंच कर निदान का उपाय किसी पंडा ओझा की भभूत या झाड़फूंक में ही खोजता रहता है।

यू ंतो जलवायु परिवर्तन प्रकृति की एक सहज प्रकिया का अंग है और दूसरे कालखंडों में भी होता रहा है। लाखों वर्ष पहले हुआ एक परिवर्तन तो सर्वविदित ही है जिसमें प्रकृति के एक छोटे से बदलाव में ही धरती में बिचरण करनें वाले भीमकाय डायनोसोर की सारी प्रजातियां ही समाप्त हो गई थी जिनके जीवाश्म यदा कदा आज भी मिलते रहते हैं। पर पहले जो परिवर्तन हुये हैं। वह प्रकृति निर्मित थे किन्तु आज जो परिवर्तन दिख रहा वह मानव निर्मित है। इसलिये उसके रोकने का उपाय भी मनुष्य को खोजना पड़ेगा जिसके वातावरण निर्माण में बुद्धिजीवियों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी ।

क्यों की आज कालीदास के वंशजों की कमी नही है कालीदास तो जिस डाल में बैठे थे उसे काट रहे थे जिससे गिरने का खतरा सिर्फ उन्हे था पर उनके वंसज खुद भर नहीं वातावरण में अनेंक घातक गैस उडेलकर पूरे जीवजगत को ही नष्ट करने मे आमादा है।

पर्यावरण शब्द हमारे देश में वैदिक काल से ही प्रचलित था पर आम लोगों तक उसकी चर्चा इसलिये नहीं थी की इक्कीसवी सदी के पहले तक प्रदूषण की कोई समस्या ही नहीं दिख रही थी। गांव की संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की अनेक परम्परायें मौजूद हैं पर अगर किसी बुजुर्ग व्यक्ति से पूंछा जाये तो वह उसका शाब्दिक अर्थ नहीं बता पायेगा। यहां तक की पिछले वर्ष जब हमनें पूर्व माध्यमिक बिद्यालयों में पर्यावरण मित्र कार्यकम चलाया तो शिक्षकों तक को स्मरण दिलाना पड़ा की हमारे आसपास खेत, मैदान, झील, झरनें, जंगल, पहाड़, नदी, घाटी, आदि जो भी मौजूद है उसी का मिला जुला स्वरूप पर्यावरण है। यह सभी पर्यावरण के घटक अपनी प्राकृतिक अवस्था में बनें रहें , इनसे अधिक छेड़छाड़ न हो यही पर्यावरण संरक्षण है। जब कि पर्यावरण उनके पाठकम मे कई वर्षो से शामिल था ।कामोवेश यही स्थिति जैवविविधता की भी थी। इसे समझााने के लिये बिबिधता से जैवविविधता की ओर जाना पड़ा। की हमारे आसपास कई तरह के मकान रंग बिरंगी मोटर कारें पेन मोबाइलें आदि हैं। यह बिबिधता तो कही जा सकती है। पर जैवविविधता नही। क्यो की जैवविविधता की पहली सर्त उसका जैविक होना है। इसलिये इस श्रेणी मे बैक्टीरिया से लेकर हांथी तक के आकार के सभी छोटे बड़े जीव, जल, जन्तु, पक्षी व पेंड़ पौधे वनस्पितियों को ही जैवविविधता के श्रेणी मे रखा जा सकता है। पर्यावरण की तरह जैवविविधता भी हमारे लोक व्योहार में पहले से ही मौंजूद है। पर यह शब्द प्रचलन मे ंइक्कीसवीं सदी के प्रथम दसक में ही आया और वह भी अग्रेंजी के बायोडायवर्सिटी के अनुवाद के रूप में। हमारे एक रिश्तेदार रामनिहोर जी के बाग में आम के उन्नीस पेंड़ हैं जो अलग अलग आकार प्रकार और स्वाद के फल देते हैं। क्यों कि उनके स्वर्गीय पिता ने आम की अलग अलग प्रजातियों का चुनाव करके अपने बगीचे मे लगाया था पर अगर रामनिहोर जी से जैवविविधता की परिभाषा पूंछी जाये तो शायद न बता पायेगें। हमारे एक साथी रामलोटन कुशबाहा के पास लौंकी की दस बारह प्रजातियां है जिन्हे वे हर वर्ष उगाकर तैयार करते हैं। पर यह ज्ञान उन्हे किसी जैवविविधता बिशेषज्ञ से नहीं मिला था। मै खुद अपने खेत मे हर वर्ष परम्परागत देशी धान की 100 से अधिक प्रजातियों को छोटे छोटे भूखंडों में उगाकर उन्हे बचाने ंका काम करता हूं पर बीज कलेक्सन के समय एक एक किसान से चार चार पांच पांच तक प्रजातियां मिली थी जब कि वे जैवविविधता की परिभाषा नहीं बता पायेगें । इन पेंड़ पौधे वनस्पतियों मे एक बिशेषता ये भी है कि वे एक दूसरे के सहयोगी नियंत्रक और भोजन श्रंखला के अंग है। रामलोटन जी की कड़वी लौकी को कोई दूसरा कीट खा रहा है तो मीठी लौकी को कोई अन्य। मिर्च बहुत तीखे होती है और तम्बाकू साक्षात बिष है पर प्रकृति ने उनके नियंत्रण के लिये भी कीट बना रखें है।

किशोरावस्था मे मैने ए.एल.बासम की एक पुस्तक पढी थी अदभुत भारत। पुस्तक मे एक प्रसंग है कि एक ऋृषि ने जीव जगत का रहस्य समझने आये अपने छात्र से कहा की तुम पीपल का एक फल लाओ और उसे तोड़ो। छात्र ने तोड़कर कहा की गुरूदेव इसमें बहुत से छोटे छोटे बीज हैं। ऋषि ने कहा कि एक बीज को तोडो। छात्र ने कहा तोड़ा गुरूदेव पर इसके अंदर तो कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा ? ऋषि ने कहा की जिस बीज मे तुम्हे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा उसमें तो लाखो कराड़ों पीपल वृक्ष तैयार होने की सम्भावना बिद्यमान है।

ऋषि का कथन सत्य था। हर पीपल और बरगद के नन्हे से बीज में लाखों वृक्ष उगा देने की सम्भावना मौजूद है पर वह फलीभूत तो तब होगा जब उस बीज को पहले कोई चिड़िया खायेगी। और उसकी जठराग्नि की हल्की हल्की आंच में उस बीज की बेदरिंग हो जायेगी। व खानें के पश्चात वह पंक्षी वृक्ष के कोटर , घर के मुडेर अथवा चबूतरे आदि में कहीं बीट करेगा। वर्ना बरगद पीपल वृक्ष के नीचे लाखो फल बिछे रहते हैं पर एक में भी अंकुरन नहीं होता। इसलिये अगर पीपल बरगद बचाना है तो उसे खानें वाली चिड़ियों को पहले बचाना होगा और प्रकृति के इस जीवन जाल को बारीकी से समझना होगा।

यदि हम शेर को किसी जानवर रहित जंगल में छोड़ दे तो वह तेंदू अचार बेल के फल नहीं खायेगा। उसके लिये हिरण, चीतल, सुअर और खरगोश का मांस चाहिये पर यह पशु जंगल मे तभी रहेंगे जब उनके चरने के लिये पर्याप्त घांस हो। फल हो, एवं पानी हो। अगर ऐसा नहीं हुआ तो शेर वहां एक सप्ताह भी नही ठहरेगा।

एक बार मैं अपने कुछ मित्रों के साथ मंडला जिला स्थित कान्हा किसली संरक्षित वन देखने गया। फाटक पार करते ही हमें आवासीय भवनो ंके आसपास ही चीतल हिरण आदि भेंड़ बकरियों की तरह बिचरण करते मिल गये। पास ही अपनी मोरनी को रिझाने के लिये एक मोर नृत्य कर रहा था तो एक बंदर चीतल के पींठ मे सवार ऐसा चल रहा सा जैसे वहां का सरदार वही हों। हमारे मित्रों ने आश्चर्य चकित होकर कहा देखो इन जानवरो मे कितनी समन्वय की भावना है। पर दोनों की दोस्ती का राज शीघ्र ही खुल गया जब चीतल बंदर को ले जाकर एक गूलर के पेंड़ के नीचे खड़ा हो गया। फिर क्या था बंदर जी उछल कर पेंड़ पर चढे और अपनी शरारत पूर्ण धमाचौकड़ी से गूलर के तमाम पके फलों को गिराने लगे। जिन्हे ं अब चीतल मजे से खा रहा था । यद्यपि यह घटना हमे अब देखने को मिली थी पर चीतल , बंदर , गूलर वृक्ष की यह स्वार्थ पूर्ण दोस्ती लाखों वर्ष पुरानी होगी। क्यो कि बट पीपल की तरह गूलर का बीज भी तभी जमता है जब किसी पक्षी य जानवर के पेट मे उसकी बेदरिंग हो जाती है।

चार पांच वर्ष पहले मै महाकौशल महोत्सव मे जबलपुर गया था मित्रता के नाते तत्कालीन वनसंरक्षक माननीय वी.वी.सिंह जी के निवास मे ठहरा था। सुबह हम लोग बंगले के सामने बैठे चाय पी रहे थे तभी मेरी नजर काले रंग की एक चिड़िया पर पड़ीं। मैने बी.बी. सिंह जी से पूंछा की यह चिड़िया इस लता के लम्बे से फूल में बार बार चोच क्यो डाल रही है ? उनने कहा फूल मे परागन कर रही है मैने कहा परागन तो भौरे तितलियां और मधुमक्खियां करती है यह चिड़िया कैसें करेगी ? उनने एक फूल तोड़ उसे चीर कर दिखाते हुये कहा कि इसमें भौरे तितलियों के बैठने के लिये तो चेम्बर ही नही है ? इसमें परागन का कार्य उड़कर ही कराया जा सकता है जिसे बाखूबी यह चिड़िया कर रही हैं। इसीलिये इसकी चोच भी शरीर के अनुपात मे बड़ी है पर इस चिड़िया को आकर्षित करने के लिये लता अपने फूल के अंदर एक मीठा पदार्थ तैयार करती है जिसके स्वाद से यह चिड़िया बार बार हर फूल मे चोच डालती है और परागन होता रहता है। हमारे बघेली में एक कहावत अक्सर कही जाती है की **छर्रा का चलबइया औ बेर्रा का बोबईया कबौं धोखा नही खाय**। अर्थात जो व्यक्ति बंदूक में छर्रा भरकर चलाता है और खेत में कई अनाजों की मिलवा खेती करता है वह कभी धोखा नही खाता। देखनें में ऐसा लगता है जैसे प्रकृति इस कहावत का पूरी तरह अनुसरण कर

रही हो। वह एक ही क्षेत्र मे कई प्रकार के पेंड़ पौधे का ढेर सारा फल व बीज उतपन्न करती है जिससे अनेक जीव जन्तुओ का जीवन जाल सुरक्षित रहता है। वे उसे खाते है और ले जाकर दूर दूर फैलाते भी है। पर लाखों करोड़ों बीजों मे से हर वर्ष एक दो प्रतिसत बीज ही जमकर तैयार होता है पूरा नहीं। किन्तु व्यापार संस्कृति से प्रेरित मनुष्य तो अनाज का एक दाना भी किसी जीव जन्तु को खाता नहीं देख सकता। वह अनाज और सब्जियों के बचाव के लिये इस तरह की घातक कीटनाशी दवाई डालता है की खेत के केचुये केकड़े सांप और तमाम जन्तु तो मर ही गये अब उसका बिशैला पानी नदियों मे जाकर मछलियों तक के जीवन को खतरे में डाल रहा हैं। जिससे लोक की युक्ति जीवहि जीव अधार या जीवहि जीवस्य भोजनम पूरी तरह नकारी जा रही है। यदि प्रकृति के रहस्य को देखा जाये तो उसकी पिरामिडनुमा भोजन श्रंखला आश्चर्य जनक है जिसमें प्रथम पायदान के बहुत बड़े भू भाग में पेंड़ पौधे वनस्पितियां हैं। किन्तु एक पौधा कही दूसरे के लिये बाधक न बन जाये इसलिये दूसरे पायदान में शाकाहारी पशु साम्हर हिरण खरगोश गाय भैस आदि नियंत्रक की भूमिका में मौजूद है। प्रथम पायदान में कुछ ऐसी कटीली छाड़ियां भी थीं जिसे उपरोक्त पशु नियंत्रित ही नहीं कर पातें थे अस्तु उसके नियंत्रण के लिये प्रकृति ने बकरी नामक ऐसा पशु बना दिया जो कटीली से कटीली झाड़ियों को चर कर नियंत्रित कर सकती है किन्तु यह सभी शाकाहारी पशु कही इतने निरंकुश न हो जायें की सारी वनस्पिति ही नष्ट कर दे इसलिये तीसरे पायदान पर उन मांसांहारी पशुओं की फौज खड़ी कर दी जिसमें शेंर चीता तेंदुआ बिल्ली बाज आदि पशु पक्षी माने जाते हैं। पर प्रकृति के सामने एक समस्या और थी की यदि यह मांसाहारी पशु मर जाये या इनके द्वारा छोड़ा गया मांस सड़ गल कर बीमारी उत्पन्न करे तो उसका निपटारा कौन करें? प्रकृति के पास उसका भी प्रबंध था। इसलिये उसने चील कौये कुत्ता सियार आदि मुर्दाखोर जंतुओं की संरचना कर दी। लकड़बघ्घा नामक ऐसा जन्तु बना दिया जो मांस मज्जा युक्त हड्डियों तक को चबा जाये और बचा कुचा सड़ा मांस छोटे छोटे सूंड़ें नुमा अपघटक जन्तु खाकर उसे मिट्टी मे मिला दे।

आकाश में उड़ रहे रंग बिरगें पंक्षी मुझे हमेशा आकर्षित करते रहे हैं। लड़कपन में मैने अनेक पक्षियों के बच्चों को हांथ मे लेकर देखा है। एक बार खेतों की बाड़ मे बच्चे रखने वाले महोखा पक्षी के बच्चे को देखकर मै यह सोचने लगा की बांकी और पक्षी तोता, कबूतर, पंडुक, आदि की संख्या तो अधिक होती है पर कौऐ के बराबर बड़ा लाल और काले पंखों वाला यह महोखा इतनी कम संख्या मे क्यो है ? पर इसका उत्तर 60 वर्ष की अवस्था पूरी करने के बाद मुझे तब मिला जब एक दिन मेरे चचेरे बड़े भाई ने अपनी आंचालिक बोली बघेली में कहा, की बाबूलाल **य महोखा आबा औ बारी के सगले गिरदानन का खायगा** अर्थात बाबूलाल देखो यह महोखा पक्षी आया और बाड़ मे रहने वाले सभी गिरगिटों को पकड़कर खा गया। अचानक मुझे गिरगिट और महोखा की सारी भोजन श्रंखला ही समझ में आ गई की अनाज के नियंत्रण के लिये प्रकृति ने कीड़े मकोड़े बनाये। कीड़े पूरा अनाज ना खा जायें इसलिये खेत की बाड़ में उनकी निगरानी के लिये गिरगिट जी पहुंच गये पर गिरगिट भी इतने निरकुंस न हो जायें इसलिये प्रकृति ने उनके नियंत्रण के लिये महोखा पक्षी बना दिया जो सूर्योदय के आधा घंटा पहले से बाड़ की सर्चिंग शुरू कर देता है और नींद में अलसाये सभी गिरगिटों को खाता रहता है। उसके सघन सर्चिगं से वहीं गिरगिट बच पातें है जो मौके की नजाकत को भांप अपना रंग बदल लेते हैं। पर महोखा भी खतरे से वंचित कहा है ? कम उड़ान भरने और खेत की चार पांच फीट उंची बाड़ में पाल बनाकर रहनें के कारण कुत्ता, बिल्ली, नेवला, आदि भी उसे अपना आहार बनाते रहते हैं। ऐसा लगता है की हमारे प्राचीन भारतीय मनिसियों को इस जीव जगत का पूरा पूरा अध्ययन था जिसकी उनने अंडज, पिंडज, स्वेदज, एवं जरायुज नामक श्रेणी बनाई थी। इसका एक वर्गीकरण उनने स्थावर और जंगम प्राणियों के आधार पर भी किया था। जो पर्यावरण और जैवविविधता के लिये महत्वपूर्ण है। स्थावर वनस्पिति जगत के वे जीवधारी हैं,

जो जमीन में उगकर उसी से जीवन रस ग्रहण करते हैं। इस बीच पाला,तुसार,बाढ, और आग लगने का खतरा भले झेलना पड़े पर वे वहां से टस का मस नहीं हो सकते भले ही झुलस कर नष्ट हो जायें। पर जंगम प्राणी के गिनती में वे दो पाये चौपाये पंख वाले जीव है जो आंख कान नाक आदि के सहारे खतरा भांप अपने जान की सुरक्षा भी कर सकते है और भोजन के तलास मे दूर दूर तक भ्रमण करने मे भी सक्षम हैं। किन्तु देखने से ऐसा लगता है की ये बगैर नाक कान और आंख वाले स्थावर प्राणी हम जंगम प्राणियों से अधिक चालांक हैं। चालांक इसलिये की वे सूर्य के प्रकाश संशलेषण द्वारा अपने पत्तियों से भोजन तो बना सकते है पर उसके लिये एक तत्व कार्बन डाईआक्साइड उन्हे हम दो पाये चौपाये जंगम प्राणियों से ही लेना पड़ता है। इस कार्बनडाईआक्साईड को प्राप्त करने के लिये ऐसा लगता है जैसे इन पेंड़ पौधे वनस्पितियों ने हमें आकर्षित करने के लिये आपस में समझौता कर रखा हो की अमुक माह मे तुम फल देना अमुक माह में हम जिससे सारे जंगम प्राणी इनके इर्द गिर्द ही मंडराते रहे। क्यों की सभी पेंड़ भले ही धरती से खाद पानी एक जैसा लेते हों पर सब के फल देने का समय अलग अलग है। स्वाद भले ही अलग अलग हो पर कोई न कोई हर महीने अवश्य ही फल देता है। एक समझौता उनने छाया देने के लिये भी कर रखा है की छोटे और सघन पत्ती वाले पेंड़ ठंडी और गर्मी में जीव जन्तुओं को आश्रय देते है पर बड़े पत्ते वाले बर्षांत के ऋतुं में। किन्तु पेंड़ पौधों का हमारे लिये स्तुत्त कार्य यह भी है की वे हमारे स्वांस से निकलने वाली कार्बनडाईआक्साइड को प्राणवायु आक्सीजन में बदलते रहते है। इसलिये हम दोनों स्थावर और जंगम प्राणी एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों का अस्तित्व भी दोनों के धरती में बचे रहने पर है। मै गांव का रहने वाला हूं पहले गांव में जब कच्चे मकान और घांस फूस की झोपड़ी हुआ करती थी तब गांव अधिक प्रकृति के नजदीक था। हर घर के पिछवाड़ें एक कोलिया (बाड़ी) हुआ करती थी जिसमें कई तरह की सब्जियां फूल आदि उगाये जाते थे। घर के सामने पेंड़ होते थे हर सब्जियों और फूलों में अलग अलग तरह के कीट पतंगे लगते थे। इन कोलियों में हरी हरी झाड़ियों की बाड़ होती थी जहां कई प्रकार के जीव जन्तुओं का नैसर्गिक रहवास था। इसलिये भरपूर जैवविविधता थी। हम सभी गांव वासी इन सभी जीव जन्तु के सहचर थे पर जैसे जैसे गांव कस्बें मे तब्दील होने लगा बाड़ कोलिया सभी समाप्त होकर पक्के माकान या बाउण्डीबाल बन गये। सड़कें और नालियां कांकीट की हो गई। जहां ना तो मक्खी मच्छर रह सकते है या उन्हें खानें वाली छिपकली। इस तरह हम अपनी सम्बद्ध जैवविविधता को खोकर प्रकृति से दूर होते चले गये जिसका दुष्परिणाम भी सामने है कि गर्मी के तेज धूप में कांकीट के भवन सड़क आदि आग की भट्ठी बनकर इतना तापकम बढा देते है की दस बजे रात्रि तक तपन समाप्त ही नहीं होती। इसलिये हमें यह भी देखने की आवश्यकता है कि प्रकृति से निरंतर दूर ले जाता यह बिकास कहीं हमें बिनाश की ओर तो नही ढकेल रहा ?

हरी खाद

अविरल असैया

वानिकी अनुसन्धान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिंदवाडा

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए हरी खाद एक सस्ता विकल्प है । सही समय पर फलीदार पौधे की खड़ी फसल को मिट्टी में ट्रेक्टर से हल चला कर दबा देने से जो खाद बनती है उसको हरी खाद कहते हैं ।

आदर्श हरी खाद में निम्नलिखित गुण होने चाहिएः

- उगाने का न्यूनतम खर्च ।
- न्यूनतम सिंचाई आवश्यकता ।
- कम से कम पादम संरक्षण ।
- कम समय में अधिक मात्रा में हरी खाद प्रदान कर सके ।
- विपरीत परिस्थितियों में भी उगने की क्षमता हो ।
- जो खरपतवारों को दबाते हुए जल्दी बढ़त प्राप्त करे ।
- जो उपलब्ध वातावरण का प्रयोग करते हुए अधिकतम उपज दे ।

हरी खाद बनाने के लिये अनुकूल फसलें

- ढेंचा, लोबिया, उरद, मूंग, ग्वार बरसीम, कुछ मुख्य फसले है जिसका प्रयोग हरी खाद बनाने में होता है । ढेंचा इनमें से अधिक आकांक्षित है ।
- ढेंचा की मुख्य किस्में सस्बेनीया ऐजिप्टिका, एस रोस्ट्रेटा तथा एस एक्वेलेटा अपने त्वरित खनिजकरण पैर्टन, उच्च नाइट्रोजन मात्रा के कारण बाद में बोई गई मुख्य फसल की उत्पादकता पर उल्लेखनीय प्रभाव डालने में सक्षम है ।

हरी खाद के पौधो को मिट्टी में मिलाने की अवस्था

- हरी खाद के लिये बोई गई फसल 55 से 60 दिन बाद जोत कर मिट्टी में मिलाने के लिये तैयार हो जाती है ।
- इस अवस्था पर तना नरम व नाजुक होता है जो आसानी से मिट्टी में कट कर मिल जाता है । 55 से 60 दिन की फसल अवस्था पर पौधे की लंबाई व हरी सामग्री अधिकतम होती है।
- इस अवस्था में कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात कम होता है, पौधे रसीले व जैविक पदार्थ से भरे होते है इस अवस्था पर नाइट्रोजन की मात्रा की उपलब्धता बहुत अधिक होती है ।
- जैसे–जैसे हरी खाद के लिये लगाई गई फसल की अवस्था बढ़ती है कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात बढ़ जाता है, जीवाणु हरी खाद के पौधो को गलाने सड़ाने के लिये मिट्टी की नाइट्रोजन का

उपयोग करते हैं । जिससे मिट्टी में अस्थाई रूप से नाइट्रोजन की कमी हो जाती है ।

हरी खाद बनाने की विधि

- अप्रेल–मई माह में गेहूँ की कटाई के बाद जमीन की सिंचाई कर लें । खेत में 50 कि.ग्रा. प्रति है. की दर से ढेंचा का बीज छितरा लें ।
- जरूरत पड़ने पर 10 से 15 दिन में ढेंचा फसल की हल्की सिंचाई कर लें ।
- 20 दिन की अवस्था पर 25 कि. प्रति है. की दर से यूरिया को खेत में छितराने से नोडयूल बनने में सहायता मिलती है ।
- 55 से 60 दिन की अवस्था में हल चला कर हरी खाद को पुनः खेत में मिला दिया जाता है। इस तरह लगभग 10 से 15 टन प्रति है. की दर से हरी खाद उपलब्ध हो जाती है ।
- जिससे लगभग 60 से 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति है. प्राप्त होता है । मिट्टी में ढेंचे के पौधो के गलने सड़ने से बैक्टीरिया द्वारा नियत सभी नाइट्रोजन जैविक रूप में लंबे समय के लिये कार्बन के साथ मिट्टी को वापस मिल जाते हैं ।

हरी खाद के लाभ

- हरी खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की भौतिक स्थिति में सुधार होता है ।
- हरी खाद से मृदा उर्वरता की भरपाई होती है ।
- न्यूट्रीयन् टअस की उपलब्धता को बढ़ाता है ।
- सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है ।
- मिट्टी की संरचना में सुधार होने के कारण फसल की जड़ों का फैलाव अच्छा होता है ।
- हरी खाद के लिए उपयोग किये गये फलीदार पौधे वातावरण से नाइट्रोजन व्यवस्थित करके नोडयूल्ज में जमा करते हैं जिससे भूमि की नाइट्रोजन शक्ति बढ़ती है ।
- हरी खाद के लिये उपयोग किये गये पौधो को जब जमीन में हल चला कर दबाया जाता है तो उनके गलने सड़ने से नोडयूल्ज में जमा की गई नाइट्रोजन जैविक रूप में मिट्टी में वापस आकर उसकी उर्वरक शक्ति को बढ़ाती है ।
- पौधो के मिट्टी में गलने सड़ने से मिट्टी की नमी को जल धारण की क्षमता में बढ़ोतरी होती है । हरी खाद के गलने सड़ने से कार्बनडाइआक्साइड गैस निकलती है जो कि मिट्टी से आवश्यक तत्व को मुक्त करवाकर मुख्य फसल के पौधो को आसानी से उपलब्ध करवाती है ।
- हरी खाद दबाने के बाद बोई गई धान की फसल में ऐकिनोक्लोआ जातियों के खरपतवार न के बराबर होते है जो हरी खाद के ऐलेलोकेमिकल प्रभाव को दर्शाते है ।

हरी खाद के बिना बोई गई धान की फसल

हरी खाद दबाने के बाद बोई गई धान की फसल

आभार: निदेशक वानिकी अनुसन्धान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र छिंदवाडा के सतत उत्साहवर्धन हेतु आभार। अन्य स्त्रोत से संकलित।

Know your Biodiversity

Swaran Lata

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Golden Oriole

The Golden Oriole is also known as the Eurasian Oriole. It is a small species of bird found throughout India. ***Oriolus oriolus*** is the scientific name of Golden oriole. The Golden Oriole's name is thought to have arisen during the 18th century after the classical Latin word meaning gold. They are also known to be the only member of the Oriole family that breeds in the more temperate regions of the northern hemisphere. Locally it is known as Peelak. It is mostly identified by its bright golden yellow body except tail and wings which is black. It has black streak through eyes. Female of this species is slightly green in colour and dull in appearance as compared to male. Both are hard to spot in the canopy as they are perfectly camouflaged amongst the leaves. It tends to be between 20 to 24 cm in height. They have dark red eyes, and a fairly thick, pink beak that is curved slightly downwards at the end.

The Golden Oriole is predominantly found throughout Europe, western Asia and some parts of Africa. It is a summer migrant bird that migrates north for the cooler summer climates and flies back south to the tropics when the winter begins. It migrates from April to May and August to September. It is nearly always found in well-timbered forests, parks, orchards and gardens. They spend the majority of their time high in the tree canopy where their distinctive plumage helps them to remain hidden from predators. The Golden Oriole breeds in the more temperate northern regions during the summer months. The female builds her nest, generally in the fork of a tree in the shape of a shallow cup. It lays 3 -6 eggs which hatch after an incubation period of 15-18 days. The life span of Golden Orioles is 9-10 years. It is an omnivorous bird which feeds on insects, fruits and seeds.

The Golden Oriole has been listed as Least Concern in IUCN Red List. Although their territories are shrinking but populations seem to be stable. Today deforestation is a major reason for losing their natural habitat due to which the number of Golden Oriole is rapidly decreasing. Hence conservation of the natural habitat is the only way to save the population of Golden Oriole.

Sarpgandha

Rauvolfia serpentina is commonly known as Indian snakeroot. It is called “Sarpa-gandha” in Sanskrit and “Chota Chand” in Hindi. Sarpgandha, snakes smell or repellant, refers to the use as an antidote for Snake-bite. The genus name was selected in honor of Dr. Leonhard Rauwolf, a 16th century German botanist. It belongs to family Apocynaceae. It is native to Indian subcontinent and East Asia. It grows in the tropical and subtropical belt with rainfall 250-500 cm, and up to 1000 m altitude. It is a small erect glabrous herb or shrub with white or pale rose flowers arranged in terminal and axillary cymes. The fruit is a single, 2-lobed drupe that turns purplish black when mature. The roots, the leaves and the juice have been considered of medicinal importance from the very early times and used by practitioners of the indigenous system of medicine.

In recent years interest has been stimulated in this drug, because of its well marked hypnotic and sedative properties. Reserpine is the most important alkaloid present in root, stem and leaves of the plant. The percentage of alkaloid depends on geographical place from where the plant is collected and also the season of collection.

Rauvolfia serpentina is used for blood pressure, nervousness, insomnia, mental disorders, fever, constipation, intestinal diseases, liver ailments, rheumatism, edema, epilepsy, diabetes, pneumonia, fever, malaria, asthma, skin diseases, scabies, eye diseases, spleen diseases, AIDS, body pain, veterinary diseases, opacity of the cornea etc. It is also used for snake and reptile bites. The root was believed to stimulate uterine contraction and recommended for use in child-birth in difficult cases. One of the chemicals in Indian snakeroot is the same as a prescription drug called reserpine. Reserpine is one of the alkaloid used to treat mild to moderate hypotension, schizophrenia. This plant is also being used to prepare fermented food products.

The increased demand for reserpine has evidently resulted in declines in wild populations of *Rauvolfia serpentina.* Habitat loss and fire are additional threats. It is critically endangered in Madhya Pradesh because of high pricing of its product in the market. Due to its medicinal properties it is commercially cultivated in India.

Around the woods

Around the woods
A weary eve
Waved its moods
To the summer leaves...

The golden reign
Of a sovereign sun
Is one mighty furn
Across the gutsy plains...

Wait for the breeze
While you settle in peace
And give in to face
This night's piece...

Nameless